मानमंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका - वर्ष ०९, अंक ०६ 'ज्येष्ठ-आषाढ़' वि. सं. २०८२ (जून २०२५ ई.) , श्रीकृष्ण सं. ५२५१

मूल्य १०/-

पूज्यश्री बाबा महाराज

स्वर्गाश्रम ऋषिकेश से पधारे
स्वामीगोविन्ददेवगिरिजी
महाराज 'पूज्यश्री बाबामहाराज'
का आशीर्वाद लेते हुए

अनुक्रमणिका

	विषय- सूची	पृष्ठ- संख्या
१	करुणासिन्धु 'श्रीसंतजन'	०५
२	श्रीजानकी-प्राकट्य से हुआ प्रेमानन्द प्रसरित	०६
३	ब्रज की वास्तविक निधि 'बाबाश्री'	०७
४	विलक्षण लोकोपकारी संत 'श्रीहनुप्रसादपोद्दारजी (भाईजी)	१२
५	ब्रज प्रेम की विचित्रता	२०
६	श्रीनाम-धाम-सेवन	२३
७	सत्संग से वास्तविक विवेक	२६
८	विषय -त्याग से भगवत्प्राप्ति	३०
९	गोसेवा से संस्कार व संस्कृति का संपोषण	३२

।। राधे किशोरी दया करो ।।

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से-----

MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल** , प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**
mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org , (E-mail :info@maanmandir.org)

प्रकाशकीय

अन्धा आँख की प्राप्ति को प्रभु-कृपा समझता है, गरीब धन-प्राप्ति को प्रभु की कृपा समझता है, रोगी निरोग होने को प्रभु की कृपा समझता है; किन्तु ये सब धोखा है, ये सब प्रभु की कृपा नहीं है, प्रभु जिस पर कृपा करते हैं उसे अपनी शरण में ले लेते हैं और उस जीव की सब आसक्तियों को लूट लेते हैं, तब जीव एकमात्र प्रभु का आश्रय लेता है । यही प्रभु की सच्ची कृपा है । भगवान् की कृपा और माया की कृपा; जीव पर ये दो कृपा होती रहती हैं, इन दोनों कृपाओं में बहुत अंतर है । माया जब खुश होकर कृपा करती है तो धन-दौलत, मान-सम्मान दे देती है । माया की कृपा से 'मैं-मेरा' के भाव जागृत हो जाते हैं । भगवान् ने ध्रुवजी से कहा – **सत्याऽऽशिषो हि.....अनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥** (श्रीभागवतजी ४/९/१७)

जब प्रभु कृपा करते हैं तो धन आदि देने से पहले 'मैं-मेरा' की वृत्ति हटा देते हैं । प्रभु ने सुदामा जी को धन तो दिया परन्तु देने से पहले उनमें 'मेरा-तेरा' की भावना बिल्कुल खत्म कर दी । भगवान् अपने भक्त का सदा भला चाहते हैं । नारदजी ने भगवान् को नारी-विरह का श्राप दिया परन्तु भगवान् ने नारदजी का कल्याण ही किया, उन पर रुष्ट नहीं हुए । भगवान् तीन तरह से कृपा करते हैं । एक कृपा साक्षात् दर्शन देकर करते हैं, दूसरी कृपा मन से मंगल चाहकर करते हैं, जैसे कि अनेक निमित्त बना देना, बिना किसी प्रयत्न के कार्य बना देना और तीसरी कृपा संस्पर्श से करते हैं । जैसे मछली अण्डे को दूर से देखती है और उसका पालन करती है । कछुआ दूर से ही अपने अण्डे का चिंतन करता है, इसी से अण्डे का पालन होता है और वह बढ़ता है । सूर्य कभी नहीं पूछता कि अन्धकार कितना पुराना है? अन्धकार आज का है या वर्षों पुराना है । सूर्य की किरणें तो अन्धकार के पास पहुँचते ही उसे मिटा देती हैं । ऐसे ही प्रभु की कृपा कभी यह नहीं पूछती कि सामने वाला कितना बड़ा पापी है? प्रभु की कृपा होते ही जीव के समस्त पाप व कष्ट मिट जाते हैं । अगर प्रभु की करुणा पाना चाहते हो तो अपनी 'अहंता' को निकाल दो, देह-गेह में ममाहम् होने से ही सांसारिक आसक्तियाँ बढ़ती जाती हैं, जिससे भगवान् से दूर होते जाते हैं । प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों को छोड़ दो । भक्तिरसामृतसिंधु में आता है कि कामना ही राक्षसी है, ये जानता हुआ भक्त भगवान् की भक्ति के अलावा और कोई भी कामना नहीं करता । प्रभु को यदि पाना है तो सब आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ दो, प्रभु शीघ्र मिल जायेंगे । जिसे एक गिलास पानी की भी आवश्यकता न हो और न ही किसी से बात करने या बोलने की अपेक्षा हो, वह भक्त शान्त और निर्भय हो जाता है । जैसे वर्षा पड़ने पर घास स्वतः उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ने पर चारों ओर फिर प्रभु ही दिखाई देंगे । बिना आसक्ति छोड़े भगवद्भजन नहीं होता । आसक्ति की रस्सी दिखाई नहीं देती है परन्तु वह इतनी लम्बी होती है कि उसकी कोई सीमा नहीं है । आप अमेरिका में बैठे हैं और आसक्ति की रस्सी वहीं से बाँधकर आपको ले आयेगी । साधक को अपनी वृत्तियों को बचाकर रखना चाहिए । यदि वृत्तियाँ बँट गयीं तो साधक लुट जायेगा । वृत्तियों के बँटने के बाद कुछ भी जप, तप व पाठ आदि करते रहो कुछ नहीं मिलने वाला । अपनी वृत्तियों को सब जगह से हटाकर एक श्रीकृष्ण में लगा दो । जब तक कहीं भी आसक्ति है, चाहे थोड़ी ही क्यों न हो, तब तक वहाँ श्रीकृष्ण प्रेम नहीं होता है । प्रेम की उत्पत्ति तब ही होती है, जब जीव सब आसक्तियों को छोड़ देता है । इसलिए गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था कि हम सब कुछ छोड़कर तुम्हारे पास आयीं हैं । अपनी सब आसक्तियों को छोड़कर आयीं हैं । क्यों छोड़कर आयीं हैं ? तुम्हारी उपासना की आशा से । **'मैवं विभोऽर्हति.....आदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥'** (श्रीभागवतजी १०/२९/३१) देवहूति जी ने कहा – **'संगो यः संसृतेर्हेतुः.....निःसंगत्वाय कल्पते ॥'** (भा. ३/२३/५५) आसक्ति बहुत खराब चीज है परन्तु आसक्ति से अच्छी वस्तु भी कोई नहीं । यदि आसक्ति महापुरुषों में हो जाय तो निश्चित कल्याण हो जाता है । अगर आसक्ति संसार से नहीं छूटती है तो इसको महापुरुषों से बाँध दो, तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जायेगा ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

करुणासिन्धु 'श्रीसंतजन'

संत तो करुणा के समुद्र होते हैं । 'संत' कृपा नहीं करते अपितु संत का तो स्वभाव ही सहज कृपा करना है । संत ऐसे कृपा करते हैं जैसे अग्नि बिना चाहे ही प्रकाश और गर्मी स्वतः प्रदान करती है । ऐसे क्षमाशील व परोपकारी संतों के हृदय में भगवान् विराजते हैं । ऐसे संत जब सत्संग या वार्ता करते हैं तो उनके मुख से जो वाणी निकलती है, वह उनके हृदय में विराजमान प्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करके आती है, वह वाणी सुनने वाले को भक्त बना देती है ।**'राम सिंधु घन सज्जन धीरा ॥'** बादल समुद्र से जल को लेकर सबके कल्याण के लिए वर्षा करते हैं । समुद्र स्वयं नहीं आता, सभी के पास उसका जल बादलों के द्वारा ही पहुँचता है । बादल सबको जीवनदान देता है । बादल सबसे बड़ा परोपकारी संत है । इसी तरह भगवान् स्वयं 'समुद्र' हैं और संतजन 'बादल' हैं । यदि संत नहीं हों तो संसार को भगवत्तत्व का लाभ नहीं मिल सकता । जैसे समुद्र की उपयोगिता बादलों पर निर्भर करती है, वैसे ही भगवान् की संतों पर । जन्म तो उसी का सफल है जो स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों का परोपकार करता है । संतो का तन, मन, बुद्धि, वाणी सब कुछ दूसरों के लिए होती है । जैसे – वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, अपने फल दूसरों को दे देते हैं और स्वयं आँधी, पानी, शीत, सहकर भी आश्रितों की रक्षा करते हैं । वृक्ष जीते जी तो परोपकार करते ही हैं परन्तु मरने के बाद भी परोपकार करते हैं, उनका अंग-अंग परहित के काम आता है । इसी तरह नदियों व मेघों का पानी सब दूसरों के लिए होता है । संत वही है जिसके पास अपने लिए कुछ भी न हो, सब दूसरों के लिए हो; यही संतों की परिभाषा है । दो चीजें होती हैं - नेत्र और प्रकाश । यदि हमारे पास नेत्र हैं और प्रकाश नहीं है तो नेत्रों का कोई फायदा नहीं और यदि प्रकाश है पर नेत्र नहीं हैं तो प्रकाश का भी कोई फायदा नहीं । दोनों का लाभ परस्पर निर्भर है । संतो से हमें ये दोनों ही चीजें मिल जाती हैं इसीलिए संत भगवान् को बहुत प्रिय होते हैं । तीर्थ तो केवल शरीर के पाप ही धो सकते हैं परन्तु ऐसे संत मन के पापों को भी धो देते हैं । संत तो चलते-फिरते तीर्थ हैं । भगवान् ने स्वयं कहा है – **देवाः क्षेत्राणि.....तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥** (श्रीभागवतजी १०/८६/५२)

देव-दर्शन, तीर्थ-दर्शन आदि से तभी लाभ होगा जब आप सत्संग करेंगे । सत्संग से चिपके रहोगे तो तुम्हारे सब पाप, अशुभ, कष्ट, भोग आदि सब नष्ट हो जायेंगे । जैसे - पेड़ की जड़ें दिखाई नहीं देतीं पर वो आस-पास का सब पानी खींच लेती हैं । उसी तरह विषय मन में घुसकर सब कुछ लूट लेते हैं और जीव को पता भी नहीं चलता । मन तो विषयों को छोड़ना ही नहीं चाहता, फिर मन अंतर्मुख कैसे हो ? तो भगवान् ने कहा कि मन इस तरह से अंतर्मुख हो सकता है, जैसे कोई जीव दलदल में फँस गया है वह जितना हाथ-पाँव मारेगा उतना ही दलदल में और घुसता चला जायेगा । वैसे ही जितना साधन करोगे उतना ही दलदल में और घुसते ही जाओगे लेकिन अगर एक तीसरा आदमी एक रस्सी उस दलदल में फँसे जीव को फेंक दे तो वह दलदल से बाहर निकल सकता है । जो तीसरा तत्त्व है वह है भगवान्; जो रस्सी है वो हैं संत ।भगवान् कृपा करके संत रूपी रस्सी को जीव के पास अगर भेज दें तो उसका निश्चित कल्याण हो जाता है । जिनके पास बैठते ही भगवान् का यश सुनने को मिले, समझ लीजिये वे संत हैं । संत की तो वायु का स्पर्श भी यदि किसी जड़-चेतन को हो जाय तो वे भी भगवत्प्रेम पा जाते हैं, उनके प्रभाव से सब कृष्णमय हो जाता है । ऐसे संत के पास रहने से, बिना कुछ किये ही सहज भक्ति आ जाती है । वास्तव में यदि कोई महापुरुष मिल जाय तो उनकी सन्निधि में चाहे कोई भी साधन किया जाय, वही श्रेष्ठ है । संत के संग से ही धाम, नाम व सेवा का लाभ मिलेगा । इसलिए स्वतंत्र मत रहो, धाम में भी संतों के आश्रय में ही रहो । संतों के संग से श्रद्धा बढ़ती रहेगी और श्रद्धा ही सब पापों का नाश करती है । महापुरुषों के सानिध्य में किया गया धामवास, नाम-सेवन व इष्ट-सेवा अनन्त पुण्यदायी हो जाएगी ।

अध्यक्ष
रामजीलाल शास्त्री,
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीजानकी-प्राकट्य से हुआ प्रेमानन्द प्रसरित

परम मंगलमय 'वैशाख, शुक्ल, नवमी' तिथि को मध्याह्न मुहूर्त में श्रीजनकलली का प्राकट्य हुआ था, उनके प्रकट होने से केवल मिथिलापुरी ही नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वी में प्रसन्नता छा गई थी; उस समय वर्षा होने से वर्षों का अकाल दूर हो गया था, भूखे मरने वाले लोग सुखी हो गए थे; केवल इतना ही नहीं लोगों को असली भूख की तृप्ति मिल गई थी जनकनंदिनी के दर्शन करने से । सम्पूर्ण रसिक समाज आनन्द से भर गया था । जनकदुलारी 'सीताजी' का अवतार एक विशेष भाव को लेकर हुआ है, जो समस्त भक्ति-धर्मों का आधार धर्म था । एक रूप में हम ये भी कह सकते हैं कि जानकीजी की लीलाएँ जानने से ही हम रस की परावधि में राधारानी की लीलाओं को जान सकते हैं ।

जिस प्रकार श्रीभागवतजी में लिखा है कि 'हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप .... श्रीकृष्णावतार से ही श्रीराधिकारानी के अवतार की भूमिका बनी; ठीक उसी प्रकार श्रीरामावतार होने के बाद ही श्रीजानकीजी के प्राकट्य की लीला सम्पन्न हुई; क्योंकि चाहे कृष्णावतार हो या रामावतार हो, सरस लीलाओं का शुभारम्भ श्रीराधिका या श्रीसीता के कृपामय अवतरण से ही होता है ।

श्रीजानकी-जन्ममहोत्सव

रसिया तर्ज – आज बजी बधाई भोर, राधिका जनम लियौ ।

जग बजी बधाई जोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
एकबार नहिं भई जल-वृष्टि, हाहाकार मच्यौ तब सृष्टि,
भई मिथिला में शोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
शतानन्द ने दी नृप-शिक्षा, जगी चेतना हुई दीक्षा,
हों राजा-रानी विभोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
दोनों ने मिल हल कौ चलायौ, सुन्दर लली कौ दर्शन पायौ,
भई वर्षा घनघोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
पुरी जनक में आनंद आवै, लली प्रगट से अति सुख पावैं;
भई बधाई भोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
नाचैं-गावैं धूम मचावैं, सब जन लली-दरस कौ आवैं;
भयौ मंगलमय ठौर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
सब धामन में खुशियाँ छाईं, जगह-जगह मंगल-शहनाई;
भए रस में सराबोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
सीता-जन्म है मंगलदाई, अनुकम्पा से जानैं भाई;
है कृपामय ये छोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।
जनकलली की लीला जानैं, राधारस तब ही पहिचानैं;
तब भजैं मोह कौ तोर, लली जानकी ने जनम लियौ ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,
BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd , A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. –9927916699

ब्रज की वास्तविक निधि 'बाबाश्री'

बाबाश्री के सम्बन्ध श्रीभगवान् दास बाबा द्वारा कथित भावोद्गार

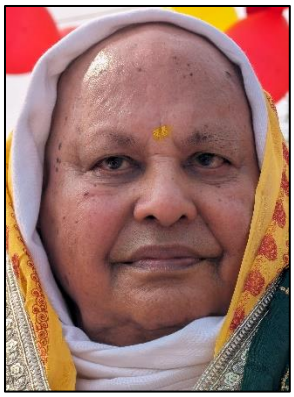

श्रीबाबा महाराज के बारे में क्या कहा जाए, सब थोड़ा ही है क्योंकि आरम्भ से लेकर आज तक उनका जीवन एक सा है, कोई परिवर्तन नहीं आया है । हम लोगों के जीवन में हमेशा परिवर्तन रहता है । बाबा सत्संग में प्रायः कहते हैं कि भारतीय साधु का जीवन स्तर (living standard) सदा बढ़ता रहता है । इन सब कोटियों में हम लोग हैं। बाबा महाराज का तो जीवन स्तर (living standard) जैसे पहले था, वैसे ही आज भी है । उनकी जेब में आज भी एक पैसा नहीं रहता, बल्कि बाबा के कुर्ते में तो जेब रहती ही नहीं है, उनका जीवन तो महात्यागियों का आदर्श उदाहरण है । बाबा के गुरुदेव श्रीप्रियाशरण बाबा ने उनको ब्रज में परम विरक्त भजनानन्दी सन्तों के दर्शन कराये थे और कहा था कि इस स्तर के साधु अब भविष्य में फिर नहीं दिखायी देंगे, अभी इनके दर्शन कर लो ।

वास्तव में हम लोग तो इस कोटि पर पहुँच भी नहीं सकते किन्तु बाबा महाराज तो इसी कोटि के सन्त हैं । श्रीप्रियाशरणबाबा की आज्ञानुसार ही वे आज भी उनकी बतायी रहनी के अनुसार ही रहते हैं । कोई सन्त महात्यागी है, यह इसी से पता चलता है कि वह अपने शरीर पर कितना धन खर्च करता है ? जिसने अपने जीवन के लिए ही सम्पूर्ण धन का संग्रह कर रखा है, वह महा त्यागी नहीं है । बाबा महाराज एक पैसे का भी संग्रह नहीं करते हैं । संग्रह करने वाले तो कोई और ही होते हैं । बाबा कहते हैं कि मुझको महात्यागी मत समझो । लाओ-लाओ, कितना पैसा देते हो ? पैसा लेकर बाबा उसे फेंक देते हैं और कहते हैं कि खजांची लोग जमा करो, मुझे पैसे से क्या मतलब है ? जैसे अन्य लोग पैसे को फेंकते हैं, उस प्रकार बाबा का फेंकना नहीं है । श्रीबाबा तो धन को सदुपयोग में व्यय करने की शिक्षा देते हैं । स्वयं बाबा पैसा इकठ्ठा नहीं करते हैं, भले ही कोई चोरी कर ले । उनका वही नियम आज भी चल रहा है । श्रीबाबा का नियम हम लोगों को जीवन में ग्रहण करने के लिए उपयोगी है । पहले मान मन्दिर में चोरी होती थी किन्तु बाबा चोरों को और सुविधा देते थे । मैंने बाबा से एक बार पूछा कि ये आप क्या करते हैं ? जो चोरी करता है, वह धन तो आप उसको देते ही हैं, अलग से भी उसे अन्य साधन देते हैं । आपका सारा धन तो वह ले लेता है, फिर अलग से भी आप उसको देते हैं । वह माँगता इसलिए है कि मैंने कोई चोरी नहीं की, मेरे पास कुछ नहीं है लेकिन सब लोग जानते हैं कि उसने सब कुछ ले लिया । मैंने श्रीबाबा से पूछा कि आप ऐसा क्यों करते हैं ? श्रीबाबा ने कहा कि मैं किसी को चोर नहीं बनाना चाहता हूँ । मैं उससे कहता हूँ कि जितनी सम्पत्ति है, सब तुम्हारी है । हमारे पास से और ले जाओ । मैं तुम्हें चोर क्यों बनाऊँ, तुम चोरी मत करो, सब तुम्हारा ही है । इस प्रकार से श्रीबाबा का आरम्भिक जीवन था । आज भी इनके आचरण अनुकरणीय हैं, इसलिए मैं इनको गुरु मानता हूँ । गुरु बनने के योग्य वही है, जिसका आचरण ग्रहणीय है । **'आचरति आचारयति वा आचार्यः'** – संस्कृत व्याकरण की इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो स्वयं आचरण करता है और जो दूसरे से आचरण करवाता है, वही आचार्य बनने के योग्य है । इस नियम के अनुसार हम बाबा महाराज को गुरु मानते हैं । गुरु बनाने के लिए कंठी-मन्त्र ही आवश्यक नहीं है । शास्त्रों में लिखा है, पहले शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है, बाद में दीक्षा होनी चाहिये । यदि शिक्षा ग्रहण नहीं किया तो दीक्षा काम नहीं आएगी । पूर्ण शिक्षा ग्रहण कर लो, फिर दीक्षा तो स्वतः ही मिलेगी । शिक्षा के द्वारा दीक्षा से भी अधिक महान कृपा प्राप्त होगी । श्रीबाबा किसी को शिष्य नहीं बनाते हैं । कबीर दास जी कहते हैं – **'रहनी है सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ।'** जो रहनी अर्थात् आचरण के साथ रहता है, हम उसको गुरु मानते हैं । श्रीबाबा महाराज इस प्रकार के नियमों का सदा ही पालन करते हैं और ऐसी ही शिक्षा उन्होंने हम लोगों को दी और सभी को देते हैं । तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा –

जदपि कही गुरु बारहि बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।

मैंने अपने गुरुजी से समस्त शास्त्रों – वेद, पुराण आदि का अध्ययन किया और सबसे सम्मत होकर मैंने रामचरितमानस को लिखा । गुरुजी ने तो बहुत कुछ कहा किन्तु मेरी मति में उतना सब कुछ नहीं आया । जैसी मेरी मति थी, वैसा मैंने समझा, उनकी कृपा से वैसा ही कुछ मैं लिखूँगा । अस्तु, गुरुजी की कृपा एवं हनुमानजी की कृपा से सारी रामचरितमानस की रचना की गयी, फिर भी गोस्वामीजी की कितनी विनम्रतापूर्ण वाणी है कि मेरी बुद्धि में जितना कुछ समझ में आया, उसी को मैं रामचरितमानस में लिखूँगा । इसी प्रकार से बाबा महाराजजी ने हम लोगों को बहुत कुछ समझाया, कोई चीज ऐसी बाकी नहीं रही, जो उन्होंने न समझाया हो । मन्त्र, तन्त्र और ग्रन्थ, कुछ भी बाकी नहीं रखा । ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है, जिससे उन्होंने हम लोगों को प्रवचन न दिया हो, सिखाया न हो । श्रीबाबा ने अपने सत्संग में जो कुछ भी वेदों, उपनिषदों, पुराणों के तथा अन्य ग्रन्थों के प्रमाण दिए, मैं उन सबको अपने रजिस्टरों में लिखता रहा, मेरे पास वे सभी प्रमाण उपलब्ध हैं । इसलिए आचरण करवाने के लिए बाबा महाराज हमको सबसे अधिक योग्य दिखाई दिए । स्वयं जिसके अन्दर आचरण हो, वह आचरण की शिक्षा दे तो अच्छा लगता है, इस कसौटी पर बाबा महाराज ही खरे उतरे । ऐसा मुझे समझ में आया, इसलिए मैं पूर्ण रूप से उनको गुरु मानता हूँ । गुरु – 'गुं रौति इति गुरुः, गुं अर्थात् अन्धकारं रौति, नष्टं करोति' – जो अन्धकार को नष्ट करता है, वह गुरु होता है । सारा प्रकाश हमको बाबा महाराज से ही मिला है, अन्य किसी से नहीं मिला, श्रीबाबा के अतिरिक्त अन्य कोई हमें योग्य भी नहीं दिखता, इसलिए मैं पूर्ण रूप से श्रीबाबा को ही गुरु मानता हूँ । उनके बारे में क्या कहा जाए, सभी शास्त्रों की शिक्षा उन्होंने मुझको प्रदान की किन्तु जैसी मेरी बुद्धि थी, उसके अनुसार मैंने ग्रहण किया । जैसा कि गोस्वामी जी ने लिखा – 'जदपि कही गुरु बारहिं बारा । समझि परी कछु मति अनुसारा ।।' बाबा ने बहुत कुछ कहा किन्तु हम लोगों की बुद्धि में नहीं आता है । मेरे पास श्री बाबा के द्वारा किये गये प्रवचन की हस्तलिखित कॉपियां एवं रजिस्टर हैं, बहुत से प्रमाण उपलब्ध हैं, उनके द्वारा मैं अपने जीवन भर शिक्षा प्राप्त करता रहूँगा तथा जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार लोगों को भी सिखाता रहूँगा । मैं उनके लायक नहीं हूँ, मैं तो उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।

श्रीबाबा महाराज के ज्ञान के बारे में क्या कहा जाए, वे अवतारी पुरुष तो हैं ही क्योंकि बिना अवतारी पुरुष के इतनी दयालुता के साथ महान ज्ञान का प्रवचन सहज में, बिना पैसे के, बिना मंच के, मधुकरी का अन्न खाकर के कहने वाला तो मैंने अपने जीवन में आज तक नहीं देखा । ऐसा साधु जो मधुकरी माँगकर खाता हो और श्रीमद्भागवत पर अष्टाचार्यों की टीका को पढ़ता और उसे पढ़ाता हो, ऐसे तो श्रीबाबा महाराज ही हैं । मैंने तो उनसे पूरी अष्टाचार्यों की टीका का अध्ययन किया है । अष्ट आचार्यों की टीका श्रीमद्भागवत पर लिखित महान ग्रन्थ है, वह सर्वसम्प्रदाय सम्मत है । सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने श्रीमद्भागवत के प्रधान श्लोकों पर अपनी टीकाएँ लिखी हैं । कहने को तो अष्टाचार्य टीका में आठ आचार्यों की टीका है किन्तु हमको तो श्रीबाबा ने उस टीका में पन्द्रह-बीस आचार्यों के नाम सहित उनकी आठ टीकाएँ अलग-अलग लिखायी हैं, बतायी, समझायी हैं, उनका अध्ययन करवाया है । पहले मैं वृन्दावन में पढ़ा हूँ, जय सिंह घेरा में भागवत पढ़ता था, वहाँ पढ़ाने वाले गुरुजी का नाम रामानुजाचार्यजी था, वे अब दिवंगत हो चुके हैं । उनके ही शिष्य हैं कृष्णचन्द्र शास्त्री, जो वर्तमान में भागवत कथा कहते हैं । उनके साथ मैंने भी भागवत पढ़ी थी । गुरुजी ने कृष्णचन्द्र शास्त्री को मेरे सामने पीट-पीटकर पढ़ाया था । वे रामानुजाचार्यजी, जिन्होंने कई साल तक मुझको भी पढ़ाया था, एक बार वे गह्वर वन में आये थे । उस समय कुटी में एक पीपल के वृक्ष के नीचे पत्थर पर बैठकर बाबा महाराज हम लोगों को अष्टाचार्यों की टीका पढ़ा रहे थे । वे छिपकर सुन रहे थे कि क्या अध्ययन कराया जा रहा है ? वे स्वयं श्रीमद्भागवत पर श्रीधरी टीका के महान पण्डित थे । उन्होंने वृन्दावन में हम लोगों को श्रीधरी टीका का अध्ययन कराया था, अन्य टीकाएँ भी बताया करते थे । जब वे गह्वर वन में बाबा महाराज के मुख से अष्टाचार्यों की टीका से कथा सुन रहे थे तो कथा के बीच में तो बाबा के पास नहीं आये, जब कथा समाप्त हो गयी तब वे आये और बाबा महाराज से मिले ।

हम लोगों ने श्रीबाबा को उनका परिचय दिया । श्रीरामानुजाचार्यजी बाबा से कह रहे थे कि इतनी गरीबी (उत्कट वैराग्य) से रह करके, जीवन भर मधुकरी का अन्न खाने वाले, कथा कहने का कोई आसन, कोई मंच नहीं, इतना गरीब साधु और इतना महान पण्डित, अष्टाचार्यों की टीका के अनुसार यहाँ के ब्रजवासियों को, यहाँ के साधुओं को पेड़ के नीचे बैठकर कथा सुना रहे हैं, ऐसा तो मैंने न कहीं देखा न सुना । महान-महान मंचों पर आसीन होकर किसी को कथा कहते देखा है, जैसे करपात्रीजी आदि विद्वान् सन्तों के भाषण मैंने सुने हैं किन्तु इस प्रकार पढ़ाने के लक्ष्य से अष्टाचार्यों की टीका से कथा कहने वाला वक्ता मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा, जो छोटे-छोटे बालकों को भी अष्टाचार्य टीका के भाव सिखावे, यहाँ के साधुओं और ब्रजवासियों को भी सम्पूर्ण टीका बाँचकर सुनावे, ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा-सुना ।

मैंने तो इनको अवतारी पुरुष ही समझ रखा है क्योंकि इतनी दयालुता के साथ ज्ञान देना, यह तो केवल भगवान् का ही काम है । भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है – '**अमानित्वं अदम्भित्वं.....** ।' मेरा प्रिय कौन है, वही है जो अमानी है, अदम्भी है । ऐसे ही भगवान् भी हैं । भगवान् श्रीराम-श्रीकृष्ण ऐसे ही थे । रामजी बचपन में बच्चों को खेल में जिता देते थे और स्वयं हार जाते थे, इतने वे सरल थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गिरिराज लीला में पूँछरी के लौठा को सम्मान दिया । जब श्यामसुन्दर गोवर्द्धन को उठाने लगे तो पूँछरी का लौठा उनका सखा था, वह एक तरफ से गोवर्धन की पूँछ पकड़कर बैठ गया कि मेरी सहायता के बिना कृष्ण गोवर्धन को कैसे उठा लेंगे ? भगवान् ने उसका भी सम्मान रखा कि चलो, तुम्हारी पूजा यहीं होगी । भगवान् चाहते तो एक झटके में उसे उड़ा देते । गोवर्धन पर्वत को उठा लेते तो वह लटक जाता लेकिन भगवान् ने उसको भी सम्मान दिया । इतने अमानी थे भगवान् कि कभी अपना मान-सम्मान नहीं रखते थे । जो मान-सम्मान नहीं रखता है और ऊँची से ऊँची शिक्षा देता है, वही तो भगवान् हो सकता है । इसलिए हम तो बाबा को अवतारी पुरुष मानते हैं चाहे कोई माने अथवा न माने ।

श्रीबाबा महाराज ज्ञानी ही नहीं, महान वीर भी हैं । इनकी वीरता का सबको अनुभव है । एक बार ब्रजयात्रा में सभी यात्री प्रचण्ड वर्षा से परेशान हो गये । कई स्थलों पर इतनी वर्षा हुई कि यात्रा को बीच में ही वापस बरसाना लौटाने की स्थिति उत्पन्न हो गयी । बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गयी । यात्रा के सभी प्रमुख अधिकारियों ने कहा कि अब यात्रा को यहीं समाप्त कर दिया जाए और वापस बरसाना चलना चाहिये किन्तु बाबा का अद्भुत स्वभाव है कि वे किसी को दुःख नहीं देते हैं । उन्होंने सभी को हाँ-हाँ कह दिया कि सुबह बरसाना चले देंगे, घबराओ मत, जैसा तुम लोग कहोगे, वैसा ही करेंगे । इस प्रकार बाबा ने सभी को सांत्वना दे दी । उनकी सांत्वना से शान्ति के साथ लोग रात को सो गये और भागने वाले भाग गये । एक चौथाई यात्रा तक भाग गयी, भगोड़े लोग भाग जाते हैं किन्तु श्रीबाबा तो महान वीर हैं । जिसके पास वीरता नहीं है, आत्मशक्ति नहीं है, वह भजन नहीं कर सकता है । जिसके पास आत्मशक्ति है, उसके पास भगवान् हैं, वही अवतारी है, वही भगवान् है, साक्षात् गुरु है, वही शिक्षा दे सकता है, उसी की शिक्षा प्रभाव उत्पन्न कर सकती है । जिसके पास आत्मशक्ति ही नहीं है, जो कायर है, वह न तो स्वयं किसी मार्ग पर उन्नति कर सकता है, न किसी को उन्नति दिला सकता है, न उन्नति की शिक्षा दे सकता है, वह तो स्वयं ही फिसल जाएगा । बाबा महाराज सभी हारे हुए यात्रियों और अधिकारियों को मंच पर सांत्वना देते कि शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ, सबेरे ही हम यात्रा समाप्त करके वापस लौट जायेंगे, सब लोग भोजन कर लो । रात को सब लोग सो जाते और सबेरा होते ही बाबा कहते – 'शंख फूँक दो, यात्रा आगे बढ़ाओ ।' अब बाबा की आज्ञा टालने की तो किसी की हिम्मत नहीं होती, तुरन्त ही शंख फुँक जाता और सभी यात्री बाबा के पीछे चल देते । इस तरह बाबा महाराज केवल ज्ञानी ही नहीं, महावीर भी हैं । महावीर मनुष्य ही भक्ति में अग्रसर हो सकता है । कायर लोग भक्ति में थोड़ी सी भी बाधा आने पर पीछे भाग जाते हैं । कितने ही लोगों के बिस्तर यात्रा में चोरी हो जाते हैं तो वे भी भाग जाते हैं । बाबा महाराज की यात्रा के तो सारे बर्तन ही एक बार चोरी हो गये, यात्रा के लिए कोई बर्तन ही नहीं बचा, तब भी बाबाश्री नहीं घबराये । आगे चलकर सब व्यवस्था हो गयी, सब बर्तन मिल गये । बाबा के साथ यात्रा में बड़े-बड़े चमत्कार हुए, मरे हुए लोग जीवित हो गये । बाबा के

जीवन में मैंने महान वीरता के लक्षण देखे, चाहे गह्वर वन की सुरक्षा के संघर्ष में, चाहे यमुना आन्दोलन में, चाहे ब्रज के पर्वतों के संरक्षण के बारे में, हर जगह मैंने उनकी वीरता देखी । एक बार कामां में ब्रजयात्रा चल रही थी, शत्रु के रूप में सरकारी अधिकारी उन्हें घेरकर खड़े हुए थे, बाबा महाराज बिलकुल झुके नहीं और वे सरकार के विरुद्ध धुआँधार भाषण दे रहे थे । उस समय मैंने देखा कि कामां के दुकानदार कह रहे थे कि ये है खूँटाठोक भाषण । भाषण है तो यह है । राजस्थान सरकार के अधिकारियों ने बाबा के सामने बड़े-बड़े टेप रिकॉर्डर लगा दिए उनका भाषण टेप करने के लिए, वे सारा भाषण टेप करके ले गये और बाबा ने ऐसा भाषण दिया कि मेरे विचार से तो उन लोगों ने यही सोचा होगा कि हमारी राजस्थान सरकार तो बुद्धिहीन है किन्तु बाबा महाराज ठीक बोल रहे हैं और ऐसा बोलने वाला भी कोई नहीं है, जो सरकार के विरुद्ध इतने कठोर वचन कहे । इसलिए महान वीरता के लक्षण मैंने बाबा महाराज में देखे, ऐसी स्थिति में उनको छोड़कर और किसको गुरु बनाया जाए, क्या किसी कायर को गुरु बनाया जाए ? महान वीर, महान ज्ञानी, महान भक्तिमान महापुरुष तो मैं केवल बाबा महाराज को ही मानता हूँ । उनको मैंने कभी भक्ति विषयक बातों को छोड़कर संसारी वार्ता करते कभी नहीं देखा । गह्वर वन की रक्षा उन्होंने की तो भक्ति विषयक बातों को सिखाकर की, पर्वतों की रक्षा भी ब्रज सम्बन्धी, भक्ति विषयक बातों को सिखाकर की, यमुना आन्दोलन चलाया तो वह भी भक्ति का प्रचार करके, भक्ति करवा करके भक्ति विषयक बातें ही सिखायीं कि यमुना भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पत्ति है, हम चाहे मर जाएँ किन्तु इनकी रक्षा अवश्य ही करेंगे । हम लोग उनसे कहते थे – 'बाबा महाराज ! विरोधी पक्ष के लोग आपके जीवन को हानि पहुँचा सकते हैं ।' ब्रजयात्रा के दौरान मांट गाँव में बाबा को विष दिया गया किन्तु क्या वे भयभीत हुए ? नहीं, बाबा कभी भी अपनी मृत्यु से नहीं डरते हैं । भले ही बाबा महाराज का शरीर अस्वस्थ है किन्तु उनका हृदय तो अस्वस्थ नहीं है, उनके हृदय की भावना के बल पर ही ब्रजयात्राएँ चल रही हैं और भविष्य में भी चलती रहेंगी । सारे आन्दोलन बाबा महाराज के नाम पर चलते रहेंगे, चाहे वे रहें अथवा न रहें । ब्रजयात्रा में जिसने बाबा को विष दिया, आगे चलकर वह स्वयं बाबा के चरणों में आकर गिर पड़ा । भक्तिमान पुरुषों के साथ ही ऐसी घटनाएँ घटती हैं, सामान्य लोगों के साथ नहीं । भक्तिमान पुरुषों की रक्षा स्वयं भगवान् करते हैं, भक्तिमान पुरुषों को भगवान् अपना मानते हैं । गीता में भक्तिमान पुरुष के जो लक्षण भगवान् ने बताये हैं, वे मैंने बाबा के जीवन में पूरा का पूरा पाया । भगवान् ने गीता में भक्त के ये लक्षण बताये हैं – **अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ।।** (गीता १२/१३)
भक्त किसी से द्वेष नहीं करता, सभी प्राणियों के प्रति मित्रता एवं करुणा का भाव रखता है । वह ममतारहित, अहंकाररहित, सुख-दुःख में समान रहने वाला और क्षमाशील होता है ।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। (गीता १२/१४)
'जो सदा सन्तुष्ट रहता है, योगी है, यतात्मा तथा दृढनिश्चय वाला है, जिसके मन-बुद्धि मेरे प्रति ही समर्पित हैं, ऐसा भक्त मुझको प्रिय है ।' ये सारे लक्षण श्रीबाबा महाराज में पूरी तरह खरे उतरते हैं । इसके अतिरिक्त भगवान् ने कहा –

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।। (गीता १२/१५)
'जिस व्यक्ति को किसी से उद्वेग नहीं होता है और जिससे किसी को उद्वेग नहीं होता, हर्ष-अमर्ष और भय आदि विकारों से जो मुक्त है, वह मुझको प्रिय है ।' गीता में इस प्रकार भगवान् ने एक सच्चे भक्त के जो लक्षण बताये हैं, ये सभी लक्षण श्रीबाबा में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । इसी प्रकार भगवान् ने कहा –

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी तो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। (गीता १२/१६)
'मेरा भक्त अनपेक्ष होता है अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं रखता है ।' बाबा महाराज के पास बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी, मन्त्री आदि आते हैं किन्तु वे किसी की अपेक्षा नहीं रखते हैं, उनको अपने आसन से नीचे बिठाते हैं, अपने बराबर से या कुर्सी आदि पर नहीं बिठाते हैं । मान मन्दिर के व्यवस्थापक श्रीबाबा से कहते हैं कि ऐसा मत कीजिये किन्तु वे किसी की नहीं मानते हैं, केवल राधारानी को मानते हैं, राधारानी की जय बोलते हैं, किसी अधिकारी, मन्त्री अथवा धनी व्यक्ति को

वे बिल्कुल भी महत्त्व नहीं देते हैं । एक बार एक जज श्रीबाबा से मिलने उनके कमरे में आया तो उसको भी श्रीबाबा ने नीचे धरती पर ही बैठाया, कुर्सी पर नहीं बैठाया । श्रीबाबा ने उससे कहा कि किसी के पद अथवा प्रतिभा का हमारे यहाँ कोई सम्मान नहीं है । यहाँ सम्मान तो केवल निष्काम दीन भक्त का है ।

श्रीबाबा किसी की अपेक्षा नहीं रखते, वे तो केवल भगवान् की अपेक्षा रखते हैं । भगवान् ने आगे कहा कि मेरा भक्त पवित्र, चतुर, उदासीन होता है, उसको कोई व्यथा नहीं होती है । वह सभी आरम्भों का परित्याग करने वाला होता है ।ये सभी लक्षण भी श्रीबाबा में विद्यमान हैं । हम लोग सांसारिक आरम्भों को चालू करते हैं । श्रीबाबा भक्ति का आरम्भ चालू करते हैं । इसलिए वे भगवान् के परिकर हैं, अवतारी महापुरुष हैं, मैं तो उनको भगवत्स्वरूप ही मानता हूँ ।

इसके बाद भगवान् ने बताया कि कौन मेरा प्रिय है ?

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।। (गीता १२/१७)

जो कभी हर्षित नहीं होता, किसी से द्वेष नहीं करता, न शोक करता और कामना करता है, शुभ-अशुभ सभी को छोड़ देता है, चाहे शुभ मिले अथवा अशुभ मिले, उसका तो यह संकल्प होता है कि मुझे तो अपने लक्ष्य पर चलना है, चाहे शुभ आये अथवा अशुभ आये, चाहे कोई गाली दे, चाहे जहर दे, चाहे गोली से मारे, मैं पीछे नहीं हटूँगा, इसी में मुझे अपना जीवन बिताना है । भगवान् कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति ही भक्तिमान है और वही मेरा प्रिय है । कोई बाबा से शत्रुता करता है, बाबा का द्वार उसके लिए भी खुला है । वे कहते हैं कि उसके लिए भी मेरे मन्दिर में स्थान है, वह भी यहाँ निवास कर सकता है । जो लोग भी बाबा से शत्रुता करके अलग हुए, बाबा कभी भी उनसे द्वेष नहीं करते हैं । अगर वे पुनः उनके मन्दिर में आना चाहें तो बाबा उनको भी स्वीकार करने को तैयार हैं ।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।। (गीता १२/१८)

भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त शत्रु और मित्र के प्रति समान होता है तथा मान-अपमान में भी उसका समान भाव होता है । सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख में भी वह समान होता है तथा आसक्ति से रहित होता है ।

श्रीबाबा भी शत्रु-मित्र के प्रति समान भाव रखते हैं । संसार में न तो उनका कोई शत्रु है और न कोई मित्र । श्रीबाबा किसी से शत्रुता नहीं रखते, जिन लोगों ने उनसे अकारण शत्रुता की, उनको भी बाबा ने क्षमा कर दिया, उनसे कभी द्वेष नहीं किया । बाबा का कोई मित्र भी नहीं है । बाबा के तो सब कुछ श्रीराधा-माधव ही हैं, वही उनके एकमात्र मित्र हैं । मान-अपमान में भी श्रीबाबा समान रहते हैं । कोई उनका सम्मान करे तो बाबा प्रसन्न नहीं होते, जिन लोगों ने श्रीबाबा का अपमान करने का प्रयास किया, उससे उन्हें कभी कोई दुःख नहीं हुआ । एक बार किसी व्यक्ति ने श्रीबाबा से कहा कि आप अपने भाषण में बहुत कटु सत्य वाणी बोलते हैं, इसका परिणाम यह होगा कि कोई आपसे प्रेम नहीं करेगा । श्रीबाबा ने कहा कि मैं तो सदा सबके हित की बात करता हूँ और करता रहूँगा, चाहे किसी को अच्छा लगे या बुरा लगे । मैं चाहता ही नहीं कि कोई मुझसे प्रेम करे, मैं तो चाहता हूँ कि लोग मुझे गाली दें, मेरी निन्दा करें । सर्दी-गर्मी से भी श्रीबाबा को कभी व्यथा नहीं होती । श्रीबाबा ने मान मन्दिर में बिजली का प्रबन्ध करने को मना किया था । एक बार जब वे ब्रजयात्रा में चले गये तब पीछे से वहाँ लोगों ने बिजली की व्यवस्था की । भीषण गर्मी के मौसम में वे गीले टाट को खिड़की में लगवा देते थे । जब वे वृन्दावन में संस्कृत का अध्ययन करते थे तो भीषण सर्दी में ब्रह्म मुहूर्त में जगकर एक सरोवर के बहुत ठण्डे जल में स्नान करते थे । वहाँ अन्य लोग आते तो सर्दी के कारण चिल्लाते कि आज बहुत ठण्ड है, कैसे नहायें ? श्रीबाबा ने उन सभी से कड़ाई से कह दिया कि गीता में भगवान् ने कहा है कि सर्दी-गर्मी को सहन करो । इसलिए आज से कोई भी यहाँ कभी न कहे कि आज बहुत ठण्ड है । चिल्लाने से सर्दी दूर नहीं होगी, उसको चुपचाप सहन करो । श्रीबाबा के ऐसा कहने पर फिर किसी का साहस नहीं हुआ जो कहे कि आज बहुत सर्दी है ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।। (गीता १२/१९)

भगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त निन्दा-स्तुति में समान रहता है, मौनी अर्थात् सभी इन्द्रियों को विषय से दूर रखता है, जो कुछ मिल जाए उसी में सन्तुष्ट रहता है, अनिकेत अर्थात् उसका कोई घर भी नहीं होता अथवा घर में आसक्ति नहीं रखता, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है ।

कोई बाबा की निन्दा करे तो उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, कोई उनकी स्तुति करे, उससे भी वे प्रभावित नहीं होते । विषयासक्ति से पूर्णतया रहित हैं, खाने-पहनने को जो मिल गया, उसी में सदा सन्तुष्ट रहते हैं । अनिकेत, जिसको घर या रहने के स्थान में कोई आसक्ति नहीं है । एक बार विरोधियों ने द्वेष के कारण सिक्खों को मान मन्दिर भेजा, उन्होंने बाबा से कहा कि हमारे एक सन्त रायसेन बाबा का यह प्राचीन स्थान है, आपने अपना अड्डा यहाँ कैसे जमा लिया ? श्रीबाबा ने कहा – 'कोई बात नहीं, मैं तो किसी पेड़ के नीचे रह लूँगा, तुम लोग यहाँ रहो ।' बाद में श्रीबाबा की उच्च आध्यात्मिक स्थिति को देखकर उन्होंने स्वयं ही अपना भेद खोल दिया और बताया कि यहाँ के स्थानीय लोगों ने ही आपके विरुद्ध भड़काकर हम लोगों को यहाँ भेजा था । यह तो आपका ही स्थान है, इस मन्दिर में आप ही रहिये । इस प्रकार वे लोग श्रीबाबा को प्रणाम करके यहाँ से चले गये । बाबा अपने कमरे में अकेले नहीं रहते हैं । मैंने सदा देखा कि उनके कमरे में छोटे-छोटे बच्चे भरे रहते हैं, बड़े लोग रहते हैं । श्रीबाबा ने कभी नहीं कहा कि ये मेरा कमरा है, इसमें मैं अकेले रहूँगा, कोई अन्य मेरे कमरे में नहीं घुस सकता । वे तो अनिकेत हैं, उनका कोई निजी स्थान नहीं है । उनको जहाँ रख दिया जाता है, वहाँ रह लेते हैं, जो खिला दिया जाता है, वही खा लेते हैं । भगवान् गीता में कहते हैं कि ऐसी स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष ही मुझे प्रिय है, झूठे ही माला फिराने वाला मेरा प्रिय नहीं बनता है । इसलिए मैं श्रीबाबा महाराज को अवतारी पुरुष मानता हूँ, भगवान् का प्रिय मानता हूँ, भगवान् का प्रधान भक्त मानता हूँ, भगवान् का प्रधान विश्वासी मानता हूँ । इनको मैं आचार्य मानता हूँ । ब्रजयात्रा में मैंने प्रत्यक्ष देखा कि हर मामले में बाबा स्थिर मति रखने वाले हैं, स्थिर मति रखकर भक्ति करने-करवाने वाले हैं । चाहे किसी भी प्रकार की समस्या आ जाये, चाहे आधिदैविक समस्या हो, आधिभौतिक समस्या हो, आध्यात्मिक समस्या हो, किसी भी परिस्थिति में श्रीबाबा हिलने वाले नहीं हैं, इसलिए ऐसे महापुरुष के आश्रय में रहकर ही भक्ति करनी चाहिए, सीखनी चाहिए ।

विलक्षण लोकोपकारी संत 'श्रीहनुप्रसादपोद्दारजी (भाईजी)

आविर्भाव की संक्षिप्त कथा

श्रीभीमराजजी के कोई संतान न होने से रामकौरदेवी चिन्तित रहने लगीं, उनका विश्वास साधु-संतों में अधिक था । शिलांग में ऐसी सुविधाएँ न होने से वे पति की अनुमति लेकर एक नौकर के साथ अकेली रतनगढ़ चली आई । उस समय इतनी लम्बी यात्रा सहज नहीं थी, यह इनके अद्भुत साहस का परिचायक है । उन दिनों रतनगढ़ में नाथयोगियों में शायद श्रीलक्ष्मीनाथजी, श्रीमोतीनाथजी, श्रीमंगलनाथजी, श्रीबखन्नाथजी आदि प्रमुख थे । रामकौरदेवीकी सेवा के कारण वे इनपर कृपा भाव रखते थे । रामकौरदेवीने 'नाथजी' से अपनी चिन्ताकी बात कही । 'नाथजी' प्रसन्न थे, उन्होंने एक दिन वरदान रूपमें कह दिया कि आजसे एक वर्षके अन्दर आपके एक सर्वगुण सम्पन्न पौत्र होगा, वह बहुत ही सुशील विद्वान् और भगवद्भक्त होगा । जन्म के समय उसके ये चिह्न होंगे--मस्तकपर 'श्री' का निशान, कंधोंपर केश और दाहिनी जंघापर काले तिलका निशान तथा वह साधारण बालकों के समान जन्म के समय रुदन नहीं करेगा। ऐसा भी सुना जाता है कि उन्होंने यह भी कहा कि हमारे साथ रहनेवाले टँटिया महाराज ही आपके घर अवतरित होंगे । नाथजी के कृपापूर्ण वचन सुनकर रामकौरदेवीका हृदय प्रफुल्लित हो गया और पौत्र होनेमें उनके मन में कोई संदेह नहीं रहा ।

इसी समय एक घटना और घटी । रामकौरदेवी निम्बार्क सम्प्रदायके रतनगढ़ निवासी बाबा महरदासजी महाराजकी शिष्या थीं । इनकी प्रेरणा से रामकौरदेवीने स्थानीय श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर में विष्णु सहस्त्रनामके १०८ सम्पुट पाठका

आयोजन किया । तीन अन्य ब्राह्मण और चौथे स्वयं बाबा महरदासजी उस अनुष्ठानको करनेमें लग गये । जिस दिन १०८ सम्पुट सम्पूर्ण हुए, उस दिन दीपक में एक ही बार घी डाला गया था और दीपक अखण्ड जलता रहा । अनुष्ठानके विधिवत् पूर्ण होते ही बाबा महरदासजी बोले—रामकौर ! आज तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया । यह अभिमन्त्रित जल अपनी बहू रिखीबाई को पिला देना । निश्चय ही एक भगवद्भक्त धर्मात्मा पौत्र की प्राप्ति होगी जो तुम्हारे वंशकी कीर्ति को उज्ज्वल करेगा, उसका नाम हनुमानजी के नाम पर रखना । इस बात को सुनकर देवी रामकौरके तो हर्षकी सीमा ही नहीं रही । अब रतनगढ़ रहने की आवश्यकता नहीं थी, अतः वे शीघ्र शिलांग चली गयीं।

जन्मतिथि

शिलांग पहुँचने के कुछ समय बाद रामकौरदेवीको रिखीबाईके गर्भवती होने का पता लगा तो उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही । परम अभिलषित वस्तुकी प्रतीक्षा में हृदय की क्या अवस्था होती है--यह किसी से सुनकर समझा नहीं जा सकता है । पल-पलपर विघ्नकी आशंका से मन कैसे चंचल हो उठता है- --यह तो सर्वथा भुक्तभोगी ही जानता है। आखिर वह परम पुण्यमय क्षण उपस्थित हुआ, आश्विन कृष्ण १२, वि०सं १९४६ (दि० १७ सितम्बर सन् १८६२) को रिखीबाईने पुत्ररत्न प्राप्त किया। यह सुयोग हनुमानजीके दिन शनिवार को संघटित हुआ। सभी को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रतनगढ़ के महात्माने जन्म के समय जिन चिह्नों के होने की बात कही थी, वे सभी नवजात शिशुके शरीरपर विद्यामान् थे । रामकौरदेवीने अपनी निष्ठाके अनुसार अपने इष्टदेवका कृपा-प्रसाद मानकर बालकका नाम 'हनुमान प्रसाद' रखा ।

शिक्षा एवं दीक्षा

दीक्षा - महान संतोंकी चेष्टा भविष्य के जीवन की सूचना देती हैं । विशाल प्रासाद के निर्माणके पूर्व, उसकी नींव भी स्वतः उसी अनुरुप ही होती है । बालक हनुमानप्रसादके जीवन में भी इसी प्रकार आध्यात्मिक प्रवृत्तिका श्रीगणेश बचपन से ही आरम्भ हुआ । दादी रामकौरके लाड़ में पला हुआ बालक न अधिक चंचल था, न गम्भीर । वह दादी को सन्तोंके पास जाते देखता । देवी रामकौरकी श्रद्धामयी चेष्टा देख-देखकर वह मन-ही-मन अनेक बातें सोचता । पवित्र हृदय सन्त जिस समय देवी रामकौर से भजन की चर्चा करते, उस समय बालक एकान्तचित्तसे उनकी बातें सुनता । सन्तोंकी घटनाएँ, सन्तोंकी बात सुनकर बालक आनन्द में भर जाता । जिस समय गुरु-शिष्य विषयक चर्चा चलती, उस समय बालक के हृदय में भी शिशु-सुलभ उमंग का उन्मेष हो जाता तथा हृदय के अन्तस्तल में मूक चाह उत्पन्न होती मेरे भी एक गुरुजी होते और मेरी दीक्षा होती । देवी रामकौर बालक की गम्भीर मुद्रा देखती, देखते ही दोनों हृदय के भावतन्तु नैसर्गिक विद्युतकणों के द्वारा जुड़ जाते । देवी रामकौर के मन में स्फुरणा होने लगती—इसे दीक्षा दिला दूँ । उच्च सम्प्रदाय के उच्च सन्त के चरणाश्रय में ही मेरा बालक फले फूले । अस्तु, मन के बार बार के विचार मूर्तरूप धारण करते ही हैं, देवी रामकौरने एक दिन निश्चय कर लिया कि बालक का दीक्षा संस्कार करा देना है, तैयारियाँ होने लग गयीं ।

उन दिनों निम्बार्क सम्प्रदाय के बड़े विद्वान् महन्त मेहरदासजी रतनगढ़ में रहते थे। उनके शिष्य का नाम रामरतनदासजी था तथा. रामरतनदासजीके शिष्य श्रीव्रजदासजी थे। सन्त श्रीव्रजदासजी को बालक हनुमानप्रसादके दीक्षा गुरू होने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ । देवी रामकौरने सन्त श्रीव्रजदासजी से दीक्षा-संस्कार सम्पन्न करने की प्रार्थना की। सन्त व्रजदासजीने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

मंगलमय मुहूर्त में बालकने स्नान किया। नवीन वस्त्र पहनकर श्रीगुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुआ । हृदय में उमंग का सागर लहरा रहा था । गुरूदेवने देखा, बालक हृदयसे चाहता है, एक दिन भगवान् नारदने भी ध्रुवको ऐसे ही देखा था और — ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' की दीक्षा दी थी। आज मानों उसी की पुनरावृत्ति हो रही है । सन्त श्रीव्रजदासजीने विधि पूरी की । बालक के सुकोमल कण्ठ में गुरुदेव ने कंठी बाँध दी तथा कान में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्रोपदेश कर दिया । वैष्णवी दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ । यह संस्कार सम्वत् १९५७ वि० में रतनगढ़ में हुआ था । इसी वर्ष देवी रामकौर अपनी पीहर अमृतसर गयीं । लाडला पौत्र भी गया । बालक की दैवी दीक्षा तो हो चुकी । अब दादी

की क्रियात्मक दीक्षा प्रारंभ हुई । देवी रामकौर को श्रीहनुमानजीका इष्ट था । उन्हें श्रीहनुमानजीके साक्षात् दर्शन भी हुये थे । बालक की उम्र भी आठ वर्षकी हो चुकी थी । देवी रामकौरने हनुमान कवच का पाठ बालक को सिखा दिया और बालक ने भी सीखकर नित्य पाठ करना आरम्भ कर दिया । पाठ का यह बीजा रोपण इतना दृढ़ हुआ था कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती गयी । आगे चलकर तो वह बालक सूर्य, गणपति, देवी, शिव आदि अनेक देवस्तोत्रों का नियमसे पाठ करने लगा । नवरात्र के दिनों में तो सांगोपांग सप्तशती का अनुष्ठान एवं भागवत की कई स्तुतियों का बड़ी श्रद्धा से पाठ करता । जब दादी संत श्रीबखन्नाथजी के पास सत्संग के लिये जाती तो साथ में बालक हनुमानप्रसाद भी जाता । धीरे-धीरे नाथजीने बालक के संस्कार देखकर गीताजी के श्लोक कंठस्थ कराने शुरु किये । बालक ने एक वर्ष के अन्दर सारी गीताजी कंठस्थ करके सुना दी । अद्भुत प्रतिभा और आध्यात्मिक प्रवृत्ति देखकर नाथजी और दादीजी बड़े प्रसन्न हुए । इसी बीच में व्यापारिक जीवन में परिवर्तन आवश्यक हो उठा । श्रीकनीरामजीकी मृत्यु के बाद श्रीभीमराजजी अकेले रह गये । इसलिये आसाम प्रान्त के विस्तृत व्यापार को न सँभाल सकने के कारण, वहाँका व्यापार बन्द करना पड़ा और कलकत्तेकी दुकान (कनीराम भीमराज) का काम चालू रखकर संवत् १६५८ के सालसे सपरिवार कलकत्ते आकर रहने लगे, क्योंकि उस समय अकेले भीमराजजीको सब कामकाज देखना पडता था।

शिक्षा -- यह आश्चर्य की बात है कि जो आगे चलकर कई भाषाओंके इतने बड़े विद्वान् बने, उस बालकने कहीं विधिवत् पढ़ाई नहीं की । बाद में कलकत्तावास के समय तत्कालीन हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों एवं सम्पादकों के सम्पर्क में आकर इन्होंने हिन्दी साहित्यका समुचित ज्ञान प्राप्त किया । अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान भी कलकत्ते में ही व्यक्तिगत रूप से श्रीअयोध्याप्रसादजी के पास अध्ययन करके प्राप्त किया । अन्य भाषाओं का ज्ञान इन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा से समय-समय पर बढ़ाया । उपनयन-संस्कार पं० श्रीछोटेलालजी द्वारा सम्पन्न हुआ ।

'कल्याण' पत्रिका का शुभारम्भ

भाईजीका "मारवाड़ी अग्रवाल सभा" के साथ सम्बन्ध था, केवल समाजसेवा की दृष्टिसे । उनकी परमार्थ-साधना का यह विशेष अंग कदापि नहीं था । यों तो सभी शुभ चेष्टायें परमार्थ में सहायक होती हैं, पर जैसे कर्मयोगी का तो साधन-क्षेत्र ही शुभ कर्म होता है, वैसे इन चेष्टाओंसे सम्बन्ध नहीं था, फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशन में ही जाया करते थे ।

मारवाड़ी अग्रवाल सभाका आठवाँ अधिवेशन (चैत्र शुक्ल १, २, ३/ १६८३ वि०) दिल्ली में हुआ । इस बार सभापति श्रीजमनालालजी बजाज थे एवं स्वागताध्यक्ष थे श्रीआत्मारामजी खेमका । दोनों से ही भाईजीका घनिष्ठ सम्पर्क था । किसी कारण से आत्मारामजीने तो पहले स्वागताध्यक्षका पद ग्रहण करना ही अस्वीकार कर दिया था, पर जयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजीके आग्रहसे स्वीकृति दे दी । स्वीकृति मिल जानेपर यह प्रश्न उठा कि इतनी शीघ्रता में स्वागताध्यक्ष का सर्वांग सुन्दर भाषण तैयार हो जाना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि २४ घंटे में लिखकर छपकर दूसरे ही दिन उसे पढ़ना था । खेमकाजी ने इसका भार भाईजी पर डाला । सचमुच ही इनके सिवा इतनी शीघ्रता में गम्भीरतापूर्ण भाषण तैयार कर देने वाला और कोई था भी नहीं । ये भी खेमकाजीकी प्रेमभरी इच्छाकी उपेक्षा नहीं कर सके । रात में ही भाषण लिखकर, छपाकर इन्होंने तैयार कर दिया । दूसरे दिन अधिवेशन में भाषण पढ़ा गया । लोगों को बड़ा सुन्दर लगा । अधिवेशन में श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला भी आये हुए थे । यद्यपि बिड़लाजी के एवं भाईजी के विचारों में मतभेद था, पर बचपनकी मित्रता थी । इस बार का भाषण उन्हें भी मतभेद रहते हुए भी अच्छा लगा । वे अधिवेशन के समाप्त होने पर बात के सिलसिले में भाईजी से बोले -- भाई, तुम लोगोंके विचार क्या हैं ? कैसे हैं ? कहाँतक ठीक हैं? इसकी आलोचना हमें नहीं करनी है, पर इसका प्रचार जगत् में तुम लोगों के द्वारा हो रहा है । जनता इसे दूरतक मानती भी है । यदि तुमलोगों के पास अपने ही विचारों का, सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुम लोगोंको और भी सफलता मिलती। तुम लोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो । बिड़लाजीने परामर्शके रूप में एक चुभती हुई-सी बात कह दी थी. पर सचमुच ही यह चर्चा 'कल्याण' मासिक पत्रके जन्म में हेतु बनी । अधिवेशन समाप्त होने पर सभी अपने-अपने गन्तव्य स्थान की

ओर चल पड़े । भाईजी भी बम्बईकी ओर चले। उस समय श्रीजयदयालजी चूरू से भिवानी आये हुए थे । उन्हें बाँकुड़ा जाना था । सत्संग के लिये भिवानी में ठहर गये थे। भाईजी के मन में आया कि दर्शन का सुयोग क्यों छोड़ूं ? भिवानी चलूँ, वहाँसे साथ ही रिवाड़ी चला जाऊँगा । रिवाड़ी से बम्बई चला जाऊँगा, यही हुआ । भिवानी का सत्संग समाप्त करके श्रीजयदयालजी बाँकुड़ा के लिये रवाना हुए। गाड़ी में अधिवेशन की चर्चा छिड़ गयी । उसी प्रसंग में भाईजीने घनश्यामदासजी की पत्र निकालने की सलाहवाली बात कह डाली । पास में बैठे थे लच्छीरामजी मुरोदिया । मुरोदियाजी सुनते ही बोले—-बस-बस बिल्कुल ठीक है, अवश्य निकलना चाहिये । इतना ही नहीं, गाड़ीके एक कोनेमें ये भाईजीको ले गये तथा अत्यन्त प्रेमभरे आग्रह से समझा-बुझाकर इनसे वचनतक ले लिया कि मैं प्रतिदिन दो घंटा सम्पादनका कार्य किया करूँगा। इनसे वचन लेकर गोयन्दकाजीके पास आये तथा पत्र निकालने की स्वीकृति माँगने लगे । गोयन्दाकाजीने जब यह सुना कि भाईजीने सम्पादनका भार सम्भालना स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने भी सहर्ष अनुमति दे दी । गाड़ीमें ही चैत्र शुक्ल ६ सं० १६८३ को यह निश्चय हुआ कि पत्रका नाम 'कल्याण' रहेगा तथा यह व्यवस्था हुई कि बम्बईसे इसका प्रकाशन प्रारम्भ हो। पास बैठे हुए सत्संगियोके आनन्दका पारावार न रहा। देखते-ही-देखते गाड़ी रिवाड़ी आ पहुँची। गोयन्दकाजी बाँकुडेकी ओर चल पड़े और भाईजी बम्बईकी ओर। हृदयमें एक नयी सेवाका भाव, नया प्रेम, नयी उमंग लेकर बम्बई आ पहुँचे ।

'कल्याण' की तैयारी आरम्भ हुई । सबसे पहले उसके रजिस्ट्रेशन का प्रश्न था। इस क्षेत्रका अनुभव तो इन्हें था नहीं कि कैसे क्या होता है । अतः किञ्चित् विचार में पड़ गये । पर जिन विश्वसूत्रधार प्रभु को कल्याण निकलवाना अभिप्रेत था, उन्होंने अपने-आप सारा संयोग लगा दिया । भाईजी के मित्रोंमेंसे वैंकटेश्वर प्रेस के मालिक श्रीश्रीनिवासजी बजाज भी थे । उनसे बात चलनेपर प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य करा देनेका भार उन्होंने उठा लिया । इनको साथ लेकर उन्होंने रजिस्ट्रेशन आदि सभी कार्यवाहियोंकी व्यवस्था करा दी तथा 'कल्याण' के प्रथम अंककी तैयारी होने लगी ।

इसी बीच में भाईजीको पुनः एक बार राजस्थान जाना पड़ा । लक्ष्मणगढ़ में लच्छीरामजी चूड़ीवालाका एक ब्रह्मचर्याश्रम है, उसीका वार्षिकोत्सव था । लच्छीरामजीका अत्यन्त आग्रह था कि भाईजी उत्सव में पधारें, इसलिये इन्हें जाना पड़ा। बम्बई लौटनेपर 'कल्याण' के प्रकाशन कार्य में तत्परता से जुट पड़े । भाईजीके अथक परिश्रम से 'कल्याण' का प्रथम अंक सर्वथा शुद्ध आध्यात्मिकता से रंगा हुआ श्रावण कृष्णा ११ सं० १६८३ के दिन सत्संगभवन, बम्बई के द्वारा बैंकेटेश्वर प्रेस में छपकर प्रकाशित हुआ । प्रथम अंक में श्रीसेठजीके दो लेख तथा एक पत्रको स्थान दिया गया । महात्मा गाँधीका एक लेख था । इसके अतिरिक्त प्राचीन-अर्वाचीन संतों की वाणी से, शास्त्रों से संकलन था तथा शेष भाईजीकी कृतियाँ थी । बम्बई में उस समय लेखों के संग्रह से लेकर ग्राहकोंतक पहुँचाने का सारा कार्य भाईजीको अकेले ही करना पड़ता था । बम्बई में इतना समय देने में कल्याण के सम्पादन कार्य में बाधा आती थी । श्रावण शुक्ल पंचमी सं० १९८३ (१३ अगस्त १६२६) के पत्र में भाईजीने दुजारीजीको लिखा--"यह आवश्यक है कि छपाने और ग्राहकों के यहाँ पहुँचाने वगैरहके झंझटसे मुझे जितना शीघ्र मुक्त कर दिया जाय उतना ही सम्पादनका कार्य सुचारु रूप से होना संभव है ।' इस संकेतको पाकर दुजारीजी अपने सनावद (मध्यप्रदेश) की दुकानके कामको छोड़कर भाईजीको पूर्ण सहयोग देनेके लिये बम्बई आ गये क्योंकि उस समय 'कल्याण' की स्थितिको देखते हुए किसीको वेतन पर रखना संभव नहीं था । दूसरे वर्षसे 'कल्याण' का प्रथम अंक विशेषांकके रूपमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीकी प्रेरणासे 'भगवन्नामांक' निकला । श्रीदुजारीजीने अपने साथी श्रीरामकृष्णजी मोहताके सहयोगसे 'कल्याण' के बहुत नये ग्राहक बनाये ।

<u>दास की एक ही पहचान है</u> – जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥ (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ८६) यह दास की पहचान है कि जो भगवान् को छोड़कर किसी दूसरे से किसी प्रकार की आशा नहीं करता है । यदि हम दास बनकर किसी सेठ के पीछे दौड़ते हैं तो दास कहाँ रहे ? यदि उसकी जरा भी कहीं दूसरी जगह आशा है तो वह दास तो नहीं है । वह दास हो ही नहीं सकता ।

भगवद्दर्शन की उत्कंठा

भाद्र शुक्ला ३ सं० १६८४ (३० अगस्त, १९२७) को भाईजी पुनः गोरखपुर आ गये एवं 'कल्याण' के दूसरे वर्षके तीसरे अंकके सम्पादनमें लग गये । ऊपरसे तो ये सारा कार्य कर रहे थे, परन्तु इनके हृदय में भगवद्दर्शनोंकी लालसा प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुहाता था ।

भाईजीका मन छटपटा रहा था, प्रभु सामने क्यों नहीं आते । हमलोग वैसी स्थिति हुए बिना कुछ भी कल्पना नहीं कर सकते । भाईजी अपना सब कुछ स्वाहा करनेको तैयार थे –

प्रियतमसे मिलनेको जिसके, प्राण कर रहे हाहाकार । गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरी को वह किसी प्रकार ।।
नहीं ताकता किंचित् भी शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर । दौड़ छूटता जहाँ बजाते, मधुर बंशरी नन्द- किशोर । (पद-रत्नाकर)

यही हालत भाईजीके हृदयकी थी । हर समय एक ही लालसा लगी हुई थी – **एक लालसा मन महँ धारौं ।**

बंशी बट, कालिंदी-तट नट नागर नित्य निहारौं । (पद-रत्नाकर/प० सं० १०५२)

अपने अध्यात्मपथपर चलते हुए भाईजी भगवान्के अत्यन्त निकट आ गये थे । दर्शनोत्कंठा प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी । श्रीसेठजी भी इस उत्कंठाको और तीव्र करते जा रहे थे । उस समय श्रीसेठजी जसीडीह में स्वास्थ्य लाभ के लिये गये हुए थे । वहाँ रहते हुए भी वे भाईजीकी मनः स्थितिसे पूर्ण परिचित थे और सूक्ष्मतासे निहार रहे थे । वे उपयुक्त अवसरकी ताक में थे ।

संकीर्तन का प्रभाव

जहाँ भाव होता है, वहाँ तो संत द्वारा कीर्तनका प्रभाव तत्काल होता है, पर जहाँ भाव नहीं भी होता वहाँ भी उसका प्रभाव देखने में आता है। ऐसी ही एक घटना जब भाईजी चैतन्य महाप्रभुकी तरह नाम-प्रचारके लिये स्थान-स्थानपर घूम रहे थे उस समयकी है । श्रीरवीन्द्रजी (सम्पादक 'पुरोधा' एवं 'अग्निशिखा, पाण्डिचेरी) बचपन में आर्य समाजी थे । उन दिनों वे कीर्तन को एक मात्र तमाशा मानते थे । एक बार उन्होंने सुना कि भाईजी अपनी टोली के साथ कीर्तन करते हैं । लड़कपनवश श्रीरवीन्द्रजी की भी इच्छा भाईजीको कीर्तन करते हुए देखनेकी हुई । वे तो एकमात्र तमाशा देखनेकी इच्छासे ही उनकी टोलीको देखने गये थे, परन्तु कीर्तन सुनकर एवं भाईजीकी भाव-मुद्रा देखकर उनके शरीर में रोमाञ्च हो उठा; उस कीर्तनका एवं भाईजीकी भाव-मुद्राका ऐसा विलक्षण प्रभाव उनके मानस पटलपर पड़ा कि वे स्वयं एक जगह लिखते हैं—'आज पैंतीस-चालीस वर्ष बाद भी भाईजी की मुद्रा को भुलाया नहीं जा सकता । कीर्तन क्या था-अमृत वर्षा थी ।'

व्रज-भ्रमण

'श्रीकृष्णांक' की तैयारी करनेके उद्देश्यसे भाईजी अपने परिवार एवं बारह परिकरोंके साथ चैत्र शुक्ल ६ सं० १६८८ (२० मार्च, १६३१) को व्रजयात्राके लिये रवाना होकर अलीगढ़में संकीर्तनमें सम्मिलित होते हुए वृन्दावन पहुँचे । वहाँ तीन दिन निवास करके प्रधान-प्रधान मन्दिरोंके दर्शन किये और फोटो लेनेकी व्यवस्था की । प्रमुख संतोंके दर्शन, वार्तालाप किया । फिर मथुरा आये एवं 'श्रीकृष्णांक' के लिये सामग्री संग्रह करनेकी व्यवस्था की । इसके साथ ही श्रीनन्दगाँव, बरसाना, राधाकुण्ड, कुसुम-सरोवर, गोवर्धन आदि सभी प्रमुख स्थलोंका भ्रमण किया ।

लौटते समय काजिमाबादमें 'गीता-ज्ञान-यज्ञ' में सम्मिलित हुएऔर श्रीहरिबाबा, श्रीभोलेबाबा, श्रीअच्युतमुनिजी आदि संतोंसे मिले । सत्संग में भाईजीने नाम-महिमाके सम्बन्ध में विशेष प्रवचन दिया एवं अपने अनुभव भी बताये ।

वैशाख शुक्ल ५ सं० १६८८ (२३ अप्रैल, १६३१) को भाईजी ऋषिकेश पहुँचे और वहाँ तीन-चार दिन सत्संगकी मंदाकिनीमें बाढ़ आ गयी । वहाँसे श्रीउड़ियाबाबासे मिलने काजिमाबाद पहुँचे । इस तरह भ्रमण करते हुए ज्येष्ठ कृष्ण ५ सं० १६८८ (७ मई, १६३१) को गोरखपुर पहुँचकर 'श्रीकृष्णांक' के सम्पादनमें व्यस्त हो गये ।

श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी (स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी) का गोरखपुरमें आगमन

'कल्याण' में प्रकाशित लेखोंसे प्रभावित होकर श्रीशान्तनुबिहारी द्विवेदी ज्येष्ठ सं० १६६१ (जून १६३४) में पहली बार गोरखपुर आये । 'कल्याण' के तीसरे वर्षके विशेषांक 'भक्तांक' को पढ़कर इनकी भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई । मिलनेकी उत्कंठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये-पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे थे, वैसे ही चल पड़े । दोहरीघाट स्टेशन तक रेलसे आये और वहाँसे गोरखपुर करीब चालीस मील पैदल चलकर । भाईजीसे मिलनेपर इन्होंने पहला प्रश्न किया -- भगवान्‌में प्रेम कैसे हो ? उत्तर में श्रीभाईजीके नेत्रोंसे अश्रु टपकने लगे एवं उन्हें गले लगाकर बोले--'उमा राम सुभाउ जेंहि जाना, ताहि भजन तजि भाव न आना ।' भाईजीके स्नेहने इन्हें आकर्षित कर लिया । एक बार तो तीन-चार दिन रहकर चले गये । दूसरी बार संकीर्तनके समय आषाढ़ शुक्ल ११ सं० १६६३ (३० जून, १६३६) को गोरखपुर आये । भाईजीके निकट रहनेकी प्रबल इच्छा होनेसे ये गोरखपुर में सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे, साथ ही साधन-भजन में विशेष रुचि लेने लगे । सम्पादन कार्य और श्रीभागवतके हिन्दी अनुवादके कार्य में इनका अच्छा सहयोग रहा । भाईजी में विशेष श्रद्धा रखते थे । कालान्तर में इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया एवं स्वामी अखण्डानन्दजीके नामसे विख्यात हुए ।

भाईजीकी हिन्दी-साहित्यको देन

आध्यात्मिक जगत् में तो भाईजी का सर्वोच्च स्थान है ही, हिन्दी-साहित्यको उन्होंने जो सामग्री प्रदान की है, वह भी अनुपम है । भाईजीने गीताप्रेसके माध्यमसे जब साहित्य प्रकाशन प्रारम्भ किया, उसके पूर्व हिन्दी धार्मिक ग्रन्थोंकी उपलब्धि अल्प-मात्रामें थी, यहाँ तक कि गीताका शुद्ध हिन्दी अनुवाद भी कठिनतासे प्राप्त होता था । महाभारत, पुराणोंके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें दुर्लभ थे । जिन ग्रन्थोंकी सत्ताका ही लोगोंको पता नहीं था, वे ही ग्रन्थ आज जो लाखों-लाखों की संख्या में हिन्दी में उपलब्ध हैं, इनका श्रेय भाईजी को ही है । केवल अनुवाद ही नहीं, 'कल्याण' के माध्यम से भाईजी ने हिन्दी-साहित्यकी जो अभिवृद्धि की है वह अतुलनीय है । उन्होंने लेखकों को तैयार किया, होनहार लेखकोंको प्रोत्साहन दिया । 'कल्याण' में लेख प्रकाशित होनेसे लेखक अपनेको गौरवशाली अनुभव करते थे । एक-एक विषयपर जो 'कल्याण' के विशेषांक प्रकाशित हुए, उनमें इतनी ठोस सामग्री का समावेश हुआ कि वे अपने विषय के विश्व-कोष बन गये । इनके अतिरिक्त भाईजी स्वयं की लेखनी से अध्यात्म-जगत् के किसी विषय को अछूता ही नहीं छोड़ा वरन् विपुल सामग्री प्रदान की । जिस प्रकार वेदोंकी गूढ़ भाषाकी व्याख्या महर्षि वेदव्यासने पुराणों द्वारा की, उसी प्रकार भाईजीने सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्यके सार भागको वर्तमान देशकी पृष्ठभूमि में हिन्दीके माध्यमसे पुनर्व्याख्यायित किया । भाईजीके लिखित समस्त ग्रन्थोंकी तो बात ही अलग है, उनके केवल दो विशाल ग्रन्थ 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' तथा 'पद-रत्नाकर' को यदि हिन्दी साहित्यके इतिहास में प्रस्तुत किये जायँ तो किसी भी महान् साहित्यकारकी तुलना में उनकी उपादेयता और महिमा अमोघ होगी । भाईजीकी दृष्टिमें -- "सत्साहित्य ही वास्तविक 'साहित्य' पद वाच्य है । केवल भाषाको साहित्य नहीं कहा जा सकता । भाषा तो साहित्यका माध्यम मात्र है । जो साहित्य विभिन्न क्षेत्रोंमें समान भावसे सभीको कल्याण-मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता है, सभीका कल्याण करता है, वही सत्साहित्य मानवको श्रेयकी ओर ले जानेके लिये विभिन्न रूपों में आत्म प्रकाश करता है तथा मानवको सदा श्रेयके मार्गपर ही आगे बढ़ाता रहता है ।" भाईजीकी समस्त रचनायें चाहे गद्य में हो या पद्य में इसी महान् आदर्शसे ओत-प्रोत है । उनका पहला लेख 'मातृभूमिकी पूजा' जनवरी सन् १९११ के 'मर्यादा' मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ था । उससे लेकर अन्ततक उन्होंने जो भी लिखा चाहे विषय कुछ भी रहा हो, मानवको कल्याणके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता रहा । आध्यात्मिक साहित्यका सृजन शिमलापालके नजरबन्दी के जीवन से प्रारम्भ हुआ, जब उन्होंने सर्वप्रथम 'नारद-भक्ति-सूत्रों की व्याख्या अपनी साधना की प्रारम्भिक अवस्था में २५ वर्ष की उम्र में लिखी । कालान्तरमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ 'प्रेम-दर्शन' के नामसे गीताप्रेस से प्रकाशित हुई । लक्ष्य इतना उच्च होनेसे ही भाईजी द्वारा निर्मित साहित्यका क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण हो गया । पद्य, निबन्ध, गद्यकाव्य, संस्मरण, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, टीका, पत्र, प्रवचन आदि वर्गों में उनकी

लेखनीने हिन्दी में साहित्य-सृजन किया । उनकी रचनाओंका परिचय भी यहाँ सम्भव नहीं है । यदि उनके सम्पूर्ण साहित्यका विवेचन किया जाय तो एक बहुत विशाल ग्रन्थ बन सकता है । लगभग बारह हजार पृष्ठोंका उनका साहित्य प्रकाशित हो चुका है । ये सभी ग्रन्थ हिन्दी साहित्यकी अमूल्य निधि हैं । यह हिन्दी साहित्यके लिये और भी गौरवकी बात है कि इनके कई ग्रन्थोंका अनुवाद संस्कृतमें तथा अंग्रेजी, बंगला एवं तमिल आदि अन्य भाषाओंमें हुआ है । तमिल अनुवाद 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा' के प्रेसमें छपे हैं । दक्षिण भारत में जहाँ हिन्दी का प्रचार बहुत कम है, वहाँ इनके हिन्दी ग्रन्थों का तमिल में अनुवाद प्रकाशित होना एक विशेष महत्त्व की बात है । 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा' का अनुवाद तो संस्कृत, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, सिंधी, उड़िया, मराठी, उर्दू तथा रशियन (रूसी) भाषाओं में हुआ । इतना ही नहीं दक्षिण भारत के लोगों ने भाईजी के लिखित ग्रन्थ एवं 'कल्याण' पढ़ने के लिये हिन्दी का अध्ययन किया । हिन्दी प्रचार का इससे अधिक ठोस माध्यम और क्या अपनाया जा सकता है ।

गीताप्रेस का विकास

गीताप्रेस की स्थापना श्रीसेठजीने मई सन् १९२३ में गोरखपुर में की । उस समय भाईजी बम्बई में थे । अगस्त १९२७ ई. में सेठजी ने जसीडीह से भाईजी को तार दिया कि 'कल्याण' का स्टाफ लेकर शीघ्र गोरखपुर जाकर दूसरे वर्षका दूसरा अंक वहींसे प्रकाशित करो। उस समय तक लगभग चार वर्ष में कुछ संस्करण गीताके और सेठजीकी लिखी हुई दो छोटी-छोटी पुस्तकें 'प्रेम भक्ति प्रकाश' और 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' ही प्रकाशित हुई थी। पैन-फ्लेट - बेड सिलिंडर मशीन लग जानेसे मुद्रणकी इतनी सामग्री रहती नहीं थी और मशीन पर्याप्त समय खाली रहती थी। श्रीसेठजीका विश्वास था कि भाईजीके गोरखपुर आ जानेसे यह समस्या हल हो जायेगी। तार मिलने के कुछ ही दिन बाद भाईजी गोरखपुर आ गये। साहित्य प्रकाशनका कार्य भार भाईजीके सम्भालनेपर कार्य तीव्र गतिसे बढ़ने लगा। उनकी कार्यशैलीसे लेखक अनुवादक मिलते गये और गीताप्रेसका कार्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। प्रेसके विद्युत-गतिसे विकास होनेका मूल कारण था श्रीभाईजीका दिव्य व्यक्तित्व । जिसके कारण सुयोग्य व्यक्ति आकर्षित होकर कार्य में सहयोग देने लगे। मुद्रणमें कोई भी अशुद्धि न रहे इसका वे विशेष ध्यान रखते थे । प्रत्येक प्रूफ तीन बार पढ़ा जाता था जिसमें दो बारभाईजी स्वयं देखते थे । जो प्रूफ सायंकाल छः बजे आते, वे चाहे कितने ही हों भाईजी प्रातः सात बजे तक उन्हें देखकर लौटा देते थे । इसके साथ ही प्रत्येक सन्दर्भ के श्लोकों आदि को मूल ग्रंथ से मिलाया जाता था, जिससे प्रत्येक प्रकाशनकी प्रमाणिकता बढ़ जाती थी । उनके इसी अध्यवसाय का परिणाम था कि गीताप्रेस की प्रतिष्ठा सब वर्गों में बढ़ती गयी । साथ ही सुन्दर चित्रों ने इस कार्य को बढ़ाने में चार चाँद लगाये ।

भाईजी के जीवनकाल में लगभग ५७५ पुस्तकें विभिन्न आकार में मुद्रित होकर देश-विदेशमें दैवी सम्पदा (भक्तिमय भावनाओं) का प्रचार करने लगी थीं । बहुत-सी पुस्तकों के संस्करण लाखों की संख्या में पहुँच गये थे । भाईजीकी एक और विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक कर्मचारीकी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखते थे और प्रत्येक कर्मचारी भाईजी को अपना संरक्षक मानकर आदर करता था और गीताप्रेस का कार्य करता था । मूल्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो इतनी सस्ती पुस्तकें कोई भी अन्य प्रकाशक देनेमें समर्थ नहीं था । केवल कल्याणको ही देखा जाय तो प्रथम वर्षके बारह अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या ३८४ थी तथा वार्षिक मूल्य तीन रुपया था। भाईजीके नित्यलीलालीन होनेके पूर्व सन् १९७० के ४४ वें वर्ष का वार्षिक मूल्य ६ रुपया था तथा पृष्ठ संख्या थी १३५६ अर्थात् तीन गुने से भी अधिक । प्रकारान्तरसे कल्याणका वार्षिक शुल्क भाईजीने कागजके मूल्यके उसी स्तरपर रखा जो चौवालिस वर्ष पहले था जबकि इन ४४ वर्षों में सभी वस्तुओं के मूल्य एक हजार प्रतिशत से अधिक बढ़े । बिना विज्ञापन के पत्रकारिता जगत्में यह एक आश्चर्यजनक कीर्तिमान है जो किसीके लिये मीलका पत्थर है। यह कीर्तिमान् हमारे देशके सम्पादकोंके लिये स्पृहणीय था ही, विदेश के पत्रकारोंने भी इसकी गरिमा स्वीकार की है।

महाप्रयाण की भूमिका

जगत् के बड़े-बड़े सन्तों ने शरीर छोड़ने के पूर्व भयंकर व्याधि एवं कष्टका भोग किया है। भाईजी भी इस संत-परम्परामें रहे। भगवान्‌की इच्छा थी कि विदा होनेके पूर्व भाईजीका पार्थिव शरीर भी ऐसी व्याधिसे ग्रस्त हो, जिससे सभी देख लें कि वे इससे सर्वथा अप्रभावित थे । सभी ने देखा कि वे व्याधि के केवल द्रष्टामात्र थे ।

२२ मार्च १९७१ का प्रातःकाल हुआ । श्वासकी गति बढ़ गयी थी। सब लोगोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय दूर नहीं है। लगभग साढ़े सात बजे पूज्य बाबा भी आ गये। अन्तमें पोद्दारजीने अपने काँपते हुए दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया--सबसे विदाई ली। लगभग सात बजकर पचपन मिनट पर वे नेत्र, जिनसे अनवरत स्नेह-वर्षा होती थी, सदा के लिये मुँद गये--अपने प्रियतम की नित्यलीला में लीन हो गये । ८ हजार की संख्या में जनसमूह गीतावाटिका में एकत्रित था । सभी के नेत्र बरस रहे थे। लगभग दो बजे स्नानादि कृत्योंका समापन करके पोद्दारजीका पार्थिव देह अर्थीपर विराजित किया गया। अर्थी नीचे बरामदे में लायी गयी; जहाँ सभी ने परिक्रमा, प्रणाम, श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। वहाँसे अर्थी श्रीराधाष्टमी पण्डालमें लायी गयी, तत्पश्चात् अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् गीतावाटिका गिरिराज-परिसरमें सम्पन्न हुई, करुण भावमय नाम-कीर्तन चल ही रहा था । विधि का विधान, पोद्दारजी की मुख्य साधना-स्थली गीतावाटिका को ही उनके शरीरके अणु-परमाणु समर्पित हो गये । उसी स्थान पर समाधि के रूप में एक भव्य स्मारक का निर्माण हुआ, जहाँ आज भी सहस्त्रों श्रद्धालु अपने-अपने भावानुसार प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं ।

आज 'श्रीभाईजी' शारीरिक रूप से भले ही संसार में न हों लेकिन उनके द्वारा गीताप्रेस के माध्यम से सबसे कम कीमत में जो धार्मिक सद्ग्रंथों व साहित्य का जो अति अद्भुत उपकार हुआ है, वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, उसके लिए भक्त-समाज सदा ऋणी रहेगा; देश-विदेश में साधारण से साधारण परिवार में भी गीता-रामायण इत्यादि ग्रन्थ सहज ही देखने को मिलते हैं, यह 'गीताप्रेस' की विशेष कृपा-करुणा भाईजी जैसे संत-महापुरुषों के द्वारा जनसामान्य तक को सुलभ हुई है ।

ब्रज प्रेम की विचित्रता

बाबाश्री के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि (१०/१२/१९९९)' से संकलित

जिस क्रिया से, जिस आचरण से अपने प्रेमास्पद को सन्तुष्टि हो, उसको ही प्रेम कहते हैं । ये कोई निश्चय नहीं है कि ऐसा ही आचरण अच्छा लगेगा । श्यामसुन्दर गोपियों की गाली से प्रसन्न रहते थे । कहीं भी प्रेम है तो वहाँ जिस आचरण से प्रसन्नता होती है । जैसे महादेवजी का जब विवाह हुआ तो रामायण में वर्णन है कि जब हिमाचल के यहाँ शिवजी की बारात गयी तो सभी देवता भी बारात के साथ में गये थे । जब वहाँ की स्त्रियों ने देखा कि सब देवता भोजन करने के लिए बैठ गये हैं तो वे गाली देने लगीं । उस गाली को सुनने के लिए देवता लोग जानबूझकर देर तक भोजन करते रहे कि दस-बीस और गालियाँ मिल जाएँ तो बढ़िया है । जो रसिक लोग होते हैं, वे व्यंग्य वचन, विनोद और गाली का रस लेते हैं और जो मूर्ख होते हैं, वे चिढ़ते हैं । जब चिढ़ते हैं तो फिर उनको मुश्किल हो जाती है । इसलिए विनोद, व्यंग्य वचन और गाली में मुस्कुराना चाहिए । यह रसिकता है । हालाँकि ऐसा स्वभाव बन जाना बहुत कठिन है । ऐसा स्वभाव तो श्यामसुन्दर और उनके प्रियजनों का ही है, बाकी लोगों का नहीं है । गोस्वामी तुलसीदासजी जो कि बड़ी मर्यादा के कवि हुए हैं किन्तु उन्होंने भी बड़ा सुन्दर लिखा है कि गारी क्या चीज है ? जैसे गारा मिट्टी और पानी दो चीजों से बनता है, उसी प्रकार गाली भी दो चीजों से बनी है ।

अमिय गारि गारेऊ गरल गारि कीन्ह करतार । प्रेम बैर की जननि जुग जानें बुध न गँवार ।।

यह दोहा गोस्वामीजी ने लिखा है और बड़ा ही विचित्र दोहा है । ब्रह्माजी ने अमृत और जहर – ये दो चीजें लेकर गाली बनायी है । जो मूर्ख होता है, वह उसमें से जहर का अंश लेता है और लड़ने लगता है और जो बुद्धिमान है, वह उसका अमृत अंश लेकर प्रसन्न होता है । गोस्वामीजी ने यह बड़ा ही अद्भुत तत्त्व लिखा है । रसिक, बुद्धिमान और मूर्ख की क्या

पहचान है ? उन्होंने एक सूत्र बनाया कि मूर्ख वह है, जो गाली सुनकर लड़ने लगता है और बुद्धिमान वह है, जो उसका

रस लेकर हँसने लगता है । यही बात सब जगह है । जैसे सन्त कौन है ? उसको सन्त नहीं कहते, जो जरा सी बात पर लड़ने लगता है । 'बूँद अघात सहे गिरि कैसे । खल के बचन सन्त सहें जैसे ।।'

जो खल (दुष्ट) के वचन को सह लेता है, वह सन्त है । जैसे वर्षा के समय पर्वत पर पानी की लाखों बूँदें गिरती हैं किन्तु पर्वत पर उनका कुछ भी असर नहीं होता है । उसी प्रकार सन्त वही है, जिसके ऊपर दुर्वचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । जिसके ऊपर प्रभाव पड़ गया, वह सन्त नहीं है । अतः सच्चा सन्त भी वही है, सच्चा रसिक भी वही है और सच्चा बुद्धिमान भी वही है, जो गाली को सह लेता है । इसलिए प्रेम क्या है, इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं है । प्रिय प्रीयणे – जिस क्रिया से अपने प्रेमास्पद को तर्पण हो, उसको प्रेम कहते हैं । जैसे गारी से प्रसन्नता हुई, खूब गारी सुनने को मिल रही है, इससे रसिक लोगों को प्रसन्नता होती है । हास-परिहास, विनोद – ये सब श्रृंगार रस है । जो मूर्ख है, वह गारी के विष वाले अंश को ग्रहण करता है और बुद्धिमान उसके अमृत वाले अंश को ग्रहण करता है । गोस्वामीजी ने यह एक थर्मामीटर नापने का बता दिया है । जो चिढता है, उसको लोग और ज्यादा चिढाते हैं और उसका जीवन अशान्त रहता है । जो रसिक होता है, वह गारी में रस लेता है । उसके प्रेम की वृद्धि होती है । इसलिए प्रेम में मान हानि नहीं समझनी चाहिए । जहाँ रसवादी मिलें तहाँ सम्मान न होइ, जहाँ मिले सम्मान तहाँ पर प्रेम न होइ । भगवान् ने भी प्रेम में अपनी भगवत्ता छोड़ दी, यही ब्रज उपासना का रहस्य है । भागवत में लिखा है –

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।

भगवान् ने अपनी योगमाया से अपने ऐश्वर्यमय स्वरूप को ढक लिया । कैसे ढक लिया ?

रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।। (भा.१०/१५/१९)

अपनी लीलाओं से वे अपने आप को ढक लेते हैं । ब्रज में जो उनकी ग्वाल लीला है, जो वे नन्द के लाल बने तो नाटक में ऐसे खेल किये कि उनका भगवानपना बिलकुल ढक गया, जैसे चोरी करना, छेड़छाड़ करना, जारवृत्ति – यही सब देखकर तो ब्रह्मा को मोह हो गया था ।

भगवान् ने ब्रज में आकर ऐसी लीलायें कीं कि अपने आप को ढक लिया । जैसे ब्रह्मा भी उनको नहीं जान सके । इसलिए ब्रज उपासना को समझना कठिन है । जिसमें जरा भी बड़प्पन है, वह ब्रज लीला को समझ ही नहीं सकता । यहाँ तक नहीं समझ सकता जैसे हमसे बहुत से महात्माओं ने कहा कि आप ब्रजवासियों का पक्ष करते हैं । पक्ष क्या करते हैं, जब तक ब्रजवासियों की गारी और इनके विनोद से तुम प्रेम नहीं करोगे तब तक ब्रज का भाव ही नहीं आएगा । स्वयं भगवान् ने ब्रजवासियों के साथ विनोद किया, हम लोग तो बहुत ही तुच्छ मनुष्य हैं । ये तो ब्रज की उपासना है । इसका मतलब कि तुम समझे ही नहीं, तुमने भागवत ही नहीं पढ़ी, रसिकों की वाणी नहीं सुनी । भागवत में शुकदेव जी कहते हैं – **एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया** – भगवान् ने अपने आप को ढक लिया । कैसे ढक लिया ? चादर आदि नहीं ओढ़ी । गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् – उन्होंने गँवार ग्वालों जैसे आचरण किये । चलो, गाय चराना तो कोई गलत बात नहीं है, चरा लो लेकिन आगे शुकदेवजी कहते हैं – **'रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।'** ग्राम्य कहते हैं गँवार को । भगवान् ने गँवारों के साथ गँवार लीला की जैसे ठोट गँवार होते हैं । इसीलिए ब्रज उपासना को समझना कठिन है । जो गँवार बनता है, गँवारपने को सहन करता है, वह ब्रज उपासना को समझ सकता है और जो सभ्य बनता है, वह ब्रज उपासना को बिलकुल नहीं समझ सकता, जैसे ब्रह्मा को मोह हो गया था । हमारे पास कई विद्वान् आये, साधु-सन्त आये, उनकी बात सुनकर हम चुप हो जाते हैं और सोचते हैं कि जब राधारानी की दया होती है, तब ऐसा स्वभाव बनता है कि ब्रजवासियों के विनोद को सुनकर, उनकी गाली को सुनकर मुस्कुरा देता है । जो मान-सम्मान के लिए मरता रहता है, वह ब्रज की उपासना को नहीं समझ सकता है, कभी नहीं समझेगा । भगवान् ने ही ब्रज में अपना मान नहीं रखा । ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः – भगवान् ब्रज में गँवारों के साथ गँवार बन गया, यहाँ परमात्मा गँवार रूप में है, इसलिए उसकी लीला को नहीं समझा जा सकता । जब परमात्मा

राजा के रूप में आता है तो समझ में आ जाता है । जब परमात्मा नर-नारायण के रूप में आये और तपस्या की तो समझ में आता है । जब परमात्मा उपदेश देता है, जैसे गीता का उपदेश करने वाले कृष्ण का सम्मान है । गीता का उपदेश करने वाले कृष्ण को तो दयानन्द सरस्वती भी मानते हैं, जो कृष्ण के विरोधी हैं और जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी । वे कहते थे कि गीता वाले कृष्ण तो और हैं लेकिन माखन चुराने वाले कृष्ण गीता वाले कृष्ण कैसे हो जायेंगे ? इतना बड़ा उपदेष्टा भला कहीं छाछ और माखन चुरायेगा ? इसलिए उनके अनुसार गीता वाले कृष्ण अलग हैं और ब्रज के कृष्ण अलग हैं । वह ब्रज के कृष्ण को बिलकुल नहीं मानते थे कि जो इतना अधिक गँवार हो गया । इसलिए जो भगवान् का रूप है धर्म संस्थापक का, उपदेश करने का, तपस्या करने का या जैसे राजा रामचन्द्र बन गये – ये सब तो समझ में आ जाता है लेकिन जब भगवान् गँवार बनता है तो उसका वह रूप समझ में नहीं आता है । उसको तो केवल जिस पर श्रीजी की कृपा हो या ब्रजवासी ही समझ सकते हैं । जैसे कहा गया कि ब्रज रस ब्रजवासी ही जानें याको मूरख समझे नाय ।

किसी ज़माने में आर्य समाज का बड़ा प्रभाव हुआ था और मथुरा से ही इसका प्रचार शुरू हुआ था । मथुरा में इनके गुरु थे बिरजानन्द, जो अन्धे थे । वे वल्लभ कुल के गोस्वामियों को पढ़ाते थे । इनमें आगे विरोध हो गया क्योंकि गोस्वामी लोग ऊपर बैठते थे और उनको पढ़ाने वाले बिरजानन्दजी नीचे बैठते थे । उनके यहाँ गोस्वामियों के प्रति यह भाव था कि ये ठाकुरजी हैं किन्तु भारतीय परम्परा तो यह है कि चाहे ठाकुरजी ही क्यों न हों, गुरु के सामने तो वे भी नीचे बैठते हैं । बिरजानन्द जी अन्धे थे, एक बार उन्होंने हाथ फैलाया तो ऊँचा सा लगा, उन्होंने पूछा कि ये क्या है तो गोस्वामी बालक ने कहा कि यह मेरी गद्दी है । बिरजानन्दजी ने कहा कि तुम तो हमारे शिष्य हो । गोस्वामी बालक ने कहा कि हम आचार्य हैं, गोस्वामी हैं । इस बात पर बिरजानन्द जी चिढ़ गये, दयानन्दजी उनके शिष्य थे, उन्होंने यह बात अपने शिष्य से कही । इतनी सी बात पर बिरजानन्द वल्लभ कुल और कृष्ण उपासना से चिढ़ने लगे । उन्होंने दयानन्द से कहा कि ये तो मेरा बहुत बड़ा अपमान हुआ, अब किसी प्रकार से इसका बदला लो । उन्होंने अपने शिष्य दयानन्द से यही दक्षिणा माँगी । वहीं उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा – **पाखण्ड खण्डनी ध्वजा** । इस तरह से उनके शिष्य दयानन्द ने कृष्ण उपासना का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया । दयानन्द विद्वान तो थे ही, ये आर्य समाज के थे । उनके द्वारा कृष्ण उपासना, कृष्ण लीला का बहुत बुरी तरह से विरोध किया गया । इन लोगों ने मथुरा के होली गेट चौराहे पर एक चित्र बनवाया । जिसमें एक तरफ तो कृष्ण का चित्र था, जो माखन चुरा रहे हैं, बीच में एक शिव लिंग का चित्र था, दूसरी ओर दयानन्द जी का चित्र था । फिर वहाँ आर्य समाजी लोग भाषण देने लगे कि देखो, हिन्दू लोग लिंग की पूजा करते हैं । कितने गंदे होते हैं ये । महादेवजी का लिंग और उसके चारों ओर जो जलहरी होती है, वह पार्वतीजी की योनि मानी जाती है । आर्य समाजी लोग कहने लगे कि ऐसे धर्म को क्या मानते हो, जो लिंग और योनि की उपासना करते हैं । ये तो बड़े ही गंदे लोग हैं । कृष्ण तो चोर है, उसकी उपासना हिन्दू लोग करते हैं । वे लोग बड़े जोर से भाषण दे रहे थे लेकिन कोई-कोई ब्रजवासी बड़े ही विचित्र होते हैं । वहाँ पर एक मथुरा का चौबे खड़ा हो गया और बोला कि कृष्ण की उपासना कभी नहीं करनी चाहिए । मैं भी आपके मत को मानता हूँ । यदि आप लोग अनुमति दें तो मैं अपनी बात कहूँ । आर्य समाजी लोग बड़े ही प्रसन्न हुए कि यह तो हमारे मत में आ गया । चौबे जी ने कहा कि महाराज ! आपने बहुत बढ़िया बात कही कि यह कन्हैया माखन खा रहा है, बहुत बढ़िया लौनी है और इधर स्वामी दयानन्द जी बैठे हैं । इन्होंने कन्हैया से कहा कि थोड़ा माखन मुझे भी दे दो लेकिन बीच में महादेवजी ने कहा कि तेरे लिए घंटा है । तुझे माखन कैसे मिल जाएगा ? उस चौबे के ऐसा कहने से आर्य समाजियों की सारी सभा नष्ट हो गयी । कहने का तात्पर्य ये है कि आर्य समाजियों ने कृष्ण उपासना की, कृष्ण की बहुत निन्दा की किन्तु मथुरा के उस चौबे की निष्ठा समाप्त नहीं हुई ।

अतः ब्रज के कृष्ण के गँवारपन की उपासना को कोई कैसे समझ सकता है ? रामावतार में उन्होंने शबरी का जूठा बेर एक बार खाया लेकिन सूरदासजी का एक पद है – **'ग्वालन कर ते कौर छुडावत** ।

जूठो लेत सबन के मुख ते अपने मुख में लावत ।' हर ग्वालबाल के मुख से जूठन लेकर कृष्ण खाते हैं । **'हा-हा करके माँग लेत हैं, कहत मोहि अति भावत ।'** ब्रज में कृष्ण ग्वालों की, गोपियों की, सबकी जूठन प्रतिदिन ही खाया करते थे । ऐसा ही नहीं कि केवल प्रिया-प्रियतम ही एक दूसरे की जूठन खा रहे हों, कृष्ण ब्रज में सबकी जूठन खाते हैं । इस लीला को ब्रह्माजी कैसे सहन कर सकते हैं ? इसीलिए भागवत में कहा गया – **एवं निगूढात्मगतिः** .....। भगवान् ने ब्रज में अपने आप को ढक लिया । ढक कैसे लिया ? गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् – विडम्बना – जानबूझकर ऐसा नाटक किया जैसे ठोट गँवार हो और यहाँ परमात्मा रमण करने लगे, कौन परमात्मा ? रेमे रमालालितपादपल्लवो – जिनके चरणों को वैकुण्ठ में लक्ष्मीजी गोद में लेकर अपने हाथों से प्रेमपूर्वक सहलाती थीं, दबाती थीं । उन लक्ष्मीजी का ऐसा लाड़-प्यार भूलकर वह परमात्मा ब्रज में इन गँवारों के बीच में आ गया । रेमे – यहाँ रमण कर गया । क्यों ? ऐसा रस क्या था ब्रज में, क्या कोई बहुत बड़ा रस था ? नहीं, यहाँ केवल गँवारपने का रस था । **'ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः'** – वह परमात्मा गँवारों के साथ गँवार बन गया । राधावल्लभ सम्प्रदाय के सन्त चाचा वृन्दावनदासजी ने बहुत प्रकार की माखन चोरी लीला लिखी है । उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि एक बार आठ-दस ग्वालबाल एक गोपी के घर माखन चोरी करने गये । वह गोपी बड़ी होशियार थी । तीन-चार ताले लगाकर दरवाजे पर ही सो गयी । सब ग्वाल गये, वह गोपी सो रही थी तो उन्होंने पीछे से उसके घर का छप्पर ही उठा लिया और भीतर घुसकर सब माखन खाकर और फिर छप्पर की छान रखकर आराम से चले गये । यह ब्रज की एक विचित्र लीला है । इसलिए उन्होंने यहाँ की सेवा किया । रमण का अर्थ केवल विलास करना ही नहीं होता है । बिल्वमंगलजी ने लिखा है – **'दास्यं गोकुल कामिनीषु कुरुषे न स्वाम्यं दत्तात्मसु'** – हे कृष्ण ! बड़े-बड़े आत्मज्ञानी लाखों वर्ष ध्यान करते हैं, तुम वहाँ नहीं जाते हो किन्तु गोकुल की कामिनियों की दासता करते हो । तुम्हें लज्जा नहीं आती । कोई गोपी कहती है – कन्हैया ! मेरी हेल उंचा जा तो कन्हैया उसकी हेल उंचा रहे हैं । एक लीला बड़ी विचित्र है । एक गोपी ने कहा – 'कन्हैया ! जितनी हेल उंचवायेगा, तुझे उतनी ही माखन की लौनी दूँगी ।' कन्हैया ने पूछा – 'मुझे कैसे पता पड़ेगा कि कितनी हेल उंचाई है ?' गोपी ने कहा कि जितनी हेल उंचवायेगा, उतना ही गोबर का ठप्पा तेरे गाल पर लगा दूँगी । कन्हैया जितना हेल उंचवाते, गोपी एक, दो, तीन, चार.....गिनती करती जाती । चार-पाँच हो गये और गोपी गोबर डालने गयी तो कन्हैया ने बेईमानी से तीन-चार ठप्पे बढ़ा लिए । गोपी लौटकर आई तो उसने कन्हैया से पूछा कि ये कैसे हो गया, मैंने तो तेरे पाँच ठप्पे लगाये थे, ये नौ कैसे हो गये ? कन्हैया बोले कि मैं बेईमान कैसे हूँ । इतनी लौनी तो ले ही लूँगा । मैंने मेहनत करी है । गोपी ने कन्हैया के चेहरे के सारे ठप्पे मिटा दिए और बोली कि अब तुझे एक भी लौनी नहीं दूँगी । तू बेईमान है । कन्हैया बोले कि यदि नहीं देगी तो आज तेरे घर में चोरी करूँगा । इसीलिए इस तरह की लीला को करने के लिए भगवान् लक्ष्मी द्वारा उनके चरणों की सेवा को छोड़कर यहाँ ब्रज में आये और रमण किया । इसे ग्राम्य लीला कहते हैं । यहाँ ठाकुरजी ने सेवा की । गोपियों की सेवा की, ग्वालबालों की सेवा की । सभी जानते हैं कि कितनी अद्भुत सेवा की थी । सेवा ही प्रेम है । इसलिए ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि श्रीजी-ठाकुरजी ब्रज में वृक्षों की सेवा क्यों करते हैं ? भागवत में वर्णन है कि श्यामसुन्दर ने ग्वालबालों को वृक्षों की सेवा सिखाई । वहाँ श्यामसुन्दर अपने सखाओं को इकठ्ठा करके कहते हैं -

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् । वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ।। (भा.१०/२२/३२)

हे मेरे सखाओ ! तुम वृन्दावन के लताओं-वृक्षों से शिक्षा लो और इनकी सेवा करो । इनका जीवन केवल परहित के लिए है । ये आँधी, वर्षा, धूप और पाला आदि सहकर हमारी रक्षा करते हैं । इस तरह ठाकुरजी ने ब्रज में वृक्षों की सेवा की है ।

श्रीनाम-धाम-सेवन

रामावतार में भी श्रीभगवान् की विचित्र प्रेममयी लीलाएँ हुई हैं । चित्रकूट में जब सीताजी पहुँची तो ऐसा वर्णन है कि वहाँ उन्होंने अपने हाथों से वट वृक्ष के नीचे वेदी बनायी । यही सच्चा प्रेम है । जहाँ सेवा नहीं है, वहाँ प्रेम नहीं है । इन सब वर्णनों को पढ़कर भी यदि कोई कहता है कि हम सेवा कैसे कर सकते हैं, हम तो बड़े हैं, सेवा करने से हमारी नाक कट जाएगी तो जब श्रीजी-ठाकुरजी सेवा करते हैं, सीता-रामजी सेवा करते हैं और कोई सोचे कि सेवा करने से मेरी नाक कट जाएगी तो इसका मतलब है कि अभी उसके हृदय में प्रेम नहीं है । वह प्रेम कभी जान ही नहीं सकता है कि प्रेम क्या है ? सेवा ही प्रेम है । 'तुलसी तरुवर विविध सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये ।।' चित्रकूट में सीताजी और लक्ष्मणजी वृक्ष लगाकर उनको सींचते थे । ऐसा क्यों है ? ये सब प्रेम राज्य का खेल है । इसीलिए सुधानिधि के इस श्लोक में लिखा है – राधाकरावचित पल्लव वल्लरीके । श्रीजी ठाकुरजी अपने हाथों से लता-वृक्षों की सेवा करते हैं क्योंकि सेवा ही तो प्रेम है । पहली बात तो यह है कि धाम के जितने भी वृक्ष हैं, वे चिन्मय हैं । चिन्मय का तात्पर्य है कि जो जड़ नहीं हैं । जड़ की तरह अभिनय कर रहे हैं परन्तु वास्तव में वे सब चिद् ब्रह्म हैं । इनमें जन्म-मरण नहीं है । यों समझो कि जितना भी अनन्त ब्रह्माण्ड है, यह तो एक गूलर के वृक्ष के फल की तरह है और हम जैसे जीव उस फल के भीतर के कीड़ों की तरह हैं । जैसे गूलर का कीड़ा उस फल से छूटना नहीं चाहता, उसी प्रकार हम लोग कहते हैं कि यह मेरा मकान है, मेरी जमीन है, ये मेरा खेत है और उसके पीछे लड़ मरते हैं । वे कीड़े भी गूलर के फल के भीतर लड़ाई-झगड़ा करते हैं । वे उस गूलर से निकलना नहीं चाहते और हम लोग इस ब्रह्माण्ड से निकलना नहीं चाहते । इस ब्रह्माण्ड से कौन निकलना चाहता है । यदि सच्ची लगन हो जाए तो नींद भी नहीं आएगी । क्या सोयें ? काल सिर पर है । हमको इस संसार से छूटना है, प्रभु से मिलना है । यदि प्रेम है, लगन है, मुमुक्षा है तो गोस्वामीजी ने लिखा है कि मुमुक्षु कभी सोता नहीं है । वे लिखते हैं – '**डासत ही गयी बीत निसा, कबहुँ न नाथ नींद भर सोयो** ।' सारा जीवन मुझे बिस्तर बिछाते बीत गया कि नींद आ जाए किन्तु आज तक कभी भी नींद भरकर नहीं सो सका । इसको प्रेम कहते हैं । यदि लगन लग जाए तो खाना-पीना आदि सब भार लगेगा और मनुष्य सोचता है कि इस संसार से कैसे छूटें ? इस भवसागर से कैसे पार जाएँ ? कैसे कृष्ण से मिलें ? प्रेम में उसकी नींद, खाना-पीना आदि सब छूट जाते हैं । इसी को लगन कहते हैं । एक-एक ब्रह्माण्ड में हम लोग गूलर के कीड़े की तरह फँसे हुए हैं । इससे छूटना ही नहीं चाहते हैं । अनन्त ब्रह्माण्ड जहाँ समाप्त होते हैं, वहाँ कोई पहुँच नहीं सकता । एक विज्ञान का लेख हमने पढ़ा था, उसमें लिखा था कि सेस्टार नामक एक तारा है, उसकी किरणों को पृथ्वी तक आने में चालीस साल लग जाते हैं । जबकि सूर्य की किरणों को पृथ्वी तक आने में आठ सेकण्ड लगते हैं । इस प्रकार भगवान् की यह सृष्टि कितनी अनन्त है, हम लोग सोच ही नहीं सकते । एक बार नारदजी ने भगवान् से कहा कि मुझे अपने उत्तम भक्त का दर्शन कराइए । भगवान् नारदजी को श्वेत द्वीप में ले गये । वहाँ पर स्वच्छ निर्मल जल का एक बहुत बड़ा सरोवर था । उसके किनारे पर एक बहुत बड़ा वृक्ष था । उस वृक्ष पर एक तोता बैठा था । भगवान् ने नारदजी से कहा कि यह तोता एक दो अरब वर्षों से नहीं बल्कि कई कल्पों से प्यासा है जबकि पानी के किनारे बैठा हुआ है किन्तु पानी नहीं पी रहा है । नारदजी ने पूछा – 'प्रभो ! ऐसा क्यों है ? कई कल्पों से यह पानी क्यों नहीं पी रहा है ?' भगवान् ने कहा कि तुमने कहा था कि अपने श्रेष्ठ भक्त का दर्शन कराओ तो मैं तुम्हें श्रेष्ठ भक्त का दर्शन करवाने लाया हूँ । इस तोते का नियम है अखण्ड रूप से भगवन्नाम लेने का । यह सोचता है कि जितनी देर में मैं पानी पिऊँगा, उतनी देर तक भगवन्नाम छूट जाएगा । इसका नाम से इतना प्रेम है । भगवान् ने नारदजी से कहा कि तुम इसके पास

जाकर कहो कि हे शुकराज ! आप पानी पी लो, मैं तब तक आपको भगवन्नाम सुनाता हूँ । जब तुम नाम का उच्चारण करोगे तो यह पानी पी लेगा । नारदजी भगवान् की आज्ञा से उस तोते के पास गये और जोर-जोर से भगवन्नाम का उच्चारण करने लगे, तब उसने सरोवर के जल में चोंच लगाकर पानी पिया । इसको लगन कहते हैं । नारायण स्वामी ने कहा है – **'जाहि लगन लगी घनश्याम की । धरत कहूँ पग परत है कितहूँ, सुधि नहीं छाया घाम की । छबि निहार नहिं रहत सार कछु, निश-दिन घरी पल याम की ।।'** उसको कुछ होश नहीं रहता है । अपने प्रियतम की छवि में सदा डूबा रहता है । उसको समय का कुछ पता नहीं पड़ता । न दिन का, न रात का और न सुबह-शाम का कुछ पता रहता है । जब समय की कोई खबर नहीं है तो खाने-पीने की क्या खबर होगी ? 'जित मुख उठै तितै ही धावै' इस पद के रचयिता स्वयं नारायण स्वामीजी कृष्ण प्रेम में शरीर समेत कुसुम सरोवर के पास इस पद को गाते-गाते एक लता में लीन हो गये थे । वहाँ पर उद्धवजी की बैठक के पास उनकी समाधि है । इसको लगन कहते हैं । 'जित मुँह उठै तितै ही धावै' वह भक्त भूल जाता है कि मेरा घर, कुटिया, मेरा गाँव कहाँ है ? 'भूल जाय सुधि गाम की' जो प्रेमी है, उसको अपने मान-अपमान का ध्यान नहीं रहता है । चाहे उसको गाली दो अथवा प्रशंसा करो, वह तो अपनी मस्ती में मस्त रहता है । जो हम जैसा मूर्ख होता है, वह कहता है कि मेरी नाक कट गयी, मेरा अपमान हो गया । समझ लो कि वह प्रेमी नहीं, वह तो अपने शरीर का उपासक है, भगवान् का उपासक नहीं है ।'अस्तुति निन्दा भले करो कोऊ, मेंड़ तजी कुल गाम की ।' कहाँ गाँव है, कहाँ कुल है, कहाँ इज्जत है, इसका उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता, ध्यान है तो केवल कृष्ण का । 'नारायण बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की ।'जब लगन लगती है तो उस लगन में, प्रेम में वह आकर्षण है, जो कृष्ण को खींचकर लाता है । भगवान् को जो खींचकर ला देता है, भगवान् को जो वश में करके सामने खड़ा कर देता है, वह जीव की सच्ची प्रीति, सच्ची लगन है । बाकी और साधन-भजन तो लोग करते ही हैं लेकिन जो प्रश्न है लगन का, वह एक अलग बात है । उसका सम्बन्ध मन के डूबने से है । इसीलिए राधासुधानिधि के इस श्लोक के अन्त में कहा गया है – राधा विहार विपिने रमतां मनो मे । शरीर नहीं बल्कि मन यहाँ रमण करे । जब मन रमण करता है तो दुनिया की कोई ताकत, संसार की कोई शक्ति उसको वहाँ से हटा नहीं सकती है, संसार की कोई मुसीबत नहीं हटा सकती है, जब मन रमण करता है । एक उदाहरण देख लो, किसी बड़े घर की कोई लड़की है, जिसके घर में मोटर कार है, जब उसका विवाह किसी छोटे घर में हो जाता है, जहाँ कोई गाड़ी आदि नहीं है लेकिन वहाँ उसका मन सांसारिक भोग-विलास आदि के कारण रम जाता है । इसलिए मन रमण करने के कारण वह अपने पीहर की सब सुख-सुविधा भूल जाती है कि वहाँ क्या-क्या था ? उसी प्रकार यहाँ राधा विहार विपिन में, श्रीधाम में मन रमण करना चाहिए, केवल शरीर से रहने की बात नहीं है । शरीर से तो यहाँ कितने ही लोग रहते हैं लेकिन मन से संसार का चिन्तन करते रहते हैं कि वहाँ ये हो रहा है, वो हो रहा है । हम जब ब्रज में प्रारम्भ में आये थे तो मेरे पास बहुत से पत्र आते थे किन्तु मेरे गुरुदेव ने यह शिक्षा दी थी कि जब तुम पत्र लिखोगे तो तुम्हारा मन तो ब्रज के बाहर जाएगा । यहाँ तुम ब्रजवास भी करोगे तो सोचोगे कि बम्बई वाले भक्त का जवाब नहीं आया, कलकत्ते वाले का जवाब नहीं आया । यदि इस प्रकार सोचोगे तो यहाँ रहने से क्या लाभ हुआ ? तुम्हारा मन इस धाम में, ब्रज में रमण नहीं करेगा । गुरुदेव ने कहा कि पत्र लिखना बन्द कर दो । उस दिन के बाद से हमने पत्र लिखना बन्द कर दिया । बात सही भी है, जब हम यहाँ धाम में रह रहे हैं और हमारा मन बाहर डोल रहा है, बाहर के लिए ललचा रहा है, बाहर की बात हम सुन रहे हैं, उसमें दिलचस्पी ले रहे हैं तो इसका मतलब यह है कि मन यहाँ रमण नहीं कर रहा है और सच्ची उपासना तभी होती है, जब मन यहाँ रमण करता है । रसखानजी ने कहा है – 'कोटिक हू कलधौत के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारौं ।' संसार के अनेकों सोने के महलों को मैं ब्रज के करील के काँटों के वृक्षों के ऊपर न्यौछावर करता हूँ । यहाँ के काँटे तक अच्छे लगने चाहिए । कुम्भनदासजी ने कहा है – 'कोटि मुक्ति सुख होत गूखरू जबै लगै गड़ि पाँयन ।'जब ब्रज का काँटा पाँव में चुभता है तो करोड़ों मुक्ति के समान सुख होता है । इसको कहते हैं कि मन यहाँ रमण कर रहा है किन्तु यहाँ रहकर भी बहुत से लोग यहाँ की बुराई करते रहते हैं । वे

कहते हैं कि अरे, ब्रज में कोई शुद्धि नहीं है । भिक्षा लेने जाओ तो स्त्रियाँ बिना हाथ धोये ही रोटी दे देती हैं । बहुत से बाहर के लोग हमसे कहते हैं कि ब्रजवासी बड़े गड़बड़ हैं । एक स्वामीजी ने कहा कि ब्रजवासी बोलना ही नहीं जानते हैं, तू-तड़ाके की भाषा बोलते हैं । इनमें कोई सभ्यता ही नहीं है । अब इस तरह के लोगों की बातें हम सुनते रहते हैं । अब इनको कैसे समझा दें कि ब्रज में गँवार बनने का बहुत लम्बा कोर्स है । जैसे संसार की शिक्षा में एम.ए.करने का कोर्स होता है । बी.ए. और एम.ए. का बड़ा लम्बा कोर्स होता है । १४ साल में लोग बी.ए. करते हैं और १६ साल में एम.ए. करते हैं लेकिन मैं कहता हूँ कि ब्रज में गँवार बनने का कोर्स लाखों जन्मों का है । एक आदमी बंगलौर से आये थे, पी.एच डी. कर ली थी, वहाँ के प्रतिष्ठित प्रोफ़ेसर थे । उन्होंने हमारा सत्संग सुना, फिर हमने उन्हें रस मन्दिर में भोजन करने भेजा । उनकी पत्नी भी साथ में थीं । वे बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे थे और पी.एच.डी. करने वालों को भी पढ़ाते थे लेकिन जब ब्रज की बात चल गयी तो मैं मन ही मन हँस रहा था और सोच रहा था कि पच्चीस साल पढ़ाई करके तुमने पी.एच.डी. तो कर ली लेकिन यहाँ के गँवार बनने का कोर्स लाखों जन्मों में भी नहीं आता है । अहं भाव नहीं छूटता है । इसीलिए जब मनुष्य यहाँ रहता है और यहाँ रहकर भी ब्रज की कमी देखता है, ब्रजवासियों में कमी देखता है तो इसका मतलब यही है कि अभी उसके मन ने ब्रज में रमण नहीं किया है, मन नहीं रम रहा है । जब मन यहाँ रमण करता है तब ब्रज के काँटे भी उसके लिए कमल की कली बन जाते हैं । 'तजि देह को गेह को नेह सबै' मन धाम में रमण कब करता है, जब वह अपने शरीर के और घर के सुखों को छोड़ता है । शरीर और घर अड़चन हैं । इनकी आसक्ति छोड़ दो । इसके बाद ब्रजवास करो । उसके बाद ब्रज में रहने के लिए चलो, नहीं तो यहाँ भी अपने शरीर और कुटिया के ही झगड़े में मरोगे ।'बसिए सुख सों चल कुञ्ज गली ।' हमारे पास कई अच्छे विद्वान् महात्मा आये और बोले कि हम अनुष्ठान करना चाहते हैं । अनुष्ठान में हम एक स्थान पर सोलह घंटे बैठते हैं । इसके लिए हमें एक अलग कमरा चाहिए । उनकी बात सुनकर हम चुप रहे । ब्रजवासी कहते हैं कि कब बाबा आवे, कब घंटा बाजे ? अब कब कमरा होवे और कब सोलह घंटे का तुम्हारा भजन होवे ? हम तुम्हारे लिए कहाँ से कमरा लायें ? हमें याद है कि जब हम ब्रज में आये थे तो जितने भी रास मण्डल हैं, हम उन्हीं पर पड़े रहते थे । उस समय हमारे पास कोई कुटिया नहीं थी । एक बार हम श्रीजी के मन्दिर के बाहर चौड़े में पड़े थे तो वहाँ हरिवंश गोस्वामीजी ने भीतर बुलाया कि महात्मा भीतर आ जाओ । हमने कहा कि यहीं ठीक है । कुटिया आदि की क्या आवश्यकता है ? हम तो बरसाने के हर रासमंडल पर सो चुके हैं । यदि मन रमण करता है तो कुटिया की कोई आवश्यकता नहीं है । इसीलिए तो महापुरुषों ने गाया है – 'तजि देह को गेह को नेह सबै' घर, कुटिया आदि सब भूल जाओ । 'बसिए सुख सों चल कुञ्ज गली' किसी ने पूछा कि कुञ्ज गली में क्या है ? **'उमगी ही रहे जहाँ श्याम घटा, बरसै सरसै रस भाँति भली ।'** ब्रजवास करने के पहले एक बात सोच लेना कि सुख-दुःख और मान-अपमान को एक समझना, नहीं तो इसी में मरोगे । एक बहुत अच्छा साधु था, कपड़े नहीं पहनता था, अवधूत वेष में था लेकिन एक दिन हमसे बोला कि मैंने कल की रोटी खा ली तो अब तक मुझे उलटी आ रही है । अरे, उसी रोटी को तो सब ब्रजवासी भी खा रहे हैं । तुम इतने विरक्त क्यों बन गये कि बासी रोटी खाने से तुमको उलटी आ गयी और तबियत खराब हो गयी । ब्रज में तो इस भाव से रहो – 'सुख-दुःख जहाँ इक रंग रहें' सुख-दुःख एक ही प्रतीत हों, यह प्रेम की निशानी है ।'हैं करील के कंटक कुंद कली' जब ब्रज के काँटे फूल की कली बन जाएँ तो समझो कि हमारे हृदय में ब्रज की भावना आई है । जब ऐसा भाव आ जायेगा तो – **'सुधि लेति जहाँ निज दासन की, ब्रजचन्द्र प्रिया वृषभानु लली ।'** वृषभानुनन्दिनी राधारानी और ब्रजचंद्र श्यामसुन्दर ऐसे भक्तों की खबर लेते हैं । जैसे सनातन गोस्वामीजी के लिए नन्दगाँव में टेर कदम्ब पर राधारानी ने खीर बनायी । ऐसे महापुरुष जिनके लिए सुख-दुःख समान हैं, प्रेम के रंग में मस्त हैं, उनकी खबर राधा-माधव लेते हैं और जो सुख-दुःख में, मान-अपमान में ही उलझ रहा है । थोड़ी देर में जिसका मुँह फूल जाता है, टेढ़ा हो जाता है, पिचक जाता है, वह सब प्रेम नहीं है । वह तो गड़बड़ मामला है । इसीलिए मन धाम में, ब्रज में रमण करे ।

सत्संग से वास्तविक विवेक

भगवान् कहते हैं – **न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।**
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१२/१)

यदि कोई कहता है कि मैं योगी हूँ, योग के द्वारा भवसागर पार कर जाऊँगा तो भगवान् कहते हैं कि वह झूठा है । योग से कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, न ज्ञान से मुझे पा सकता है । यदि कोई कहता है कि मैं बहुत धर्म करता हूँ तो धर्म पालन से भी मेरी प्राप्ति नहीं हो सकती । शास्त्रों के अध्ययन से भी मेरी प्राप्ति नहीं होती । तपस्या से भी मैं नहीं मिलूँगा, त्याग से नहीं मिलता, यज्ञ आदि से भी मेरी प्राप्ति नहीं होगी । इष्टापूर्त – कुँआ, धर्मशाला बनवाने से भी मैं नहीं मिलता । व्रत कर लो, तीर्थ यात्रा कर लो, यम-नियम कर लो, ब्रह्मचर्य कर लो, सत्यवादी बन जाओ, संयम कर लो – इन सबसे भी मेरी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१२/२)

केवल सत्संग से ही मेरी प्राप्ति हो सकती है । इसलिए सत्संग करो । सत्संग से क्या होता है ? सत्संग से मनुष्य की समस्त आसक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । इसलिए भक्तों के पास जाओ । सत्संग से ही गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई है । असुर जाति में उत्पन्न वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलि, बाणासुर आदि ने सत्संग के प्रभाव से ही मुझे प्राप्त किया । हनुमानजी के संग से कितने ही बन्दर भक्त बन गये, जाम्बवानजी के संग से बहुत से भालू भक्त हो गये । गजराज का उद्धार हुआ सत्संग से, गिद्ध का भी उद्धार सत्संग से हुआ । सृष्टि के जितने भी जीवों का आज तक उद्धार हुआ है, वह केवल सत्संग से ही हुआ है । ब्रज की गोपियों ने मेरे बिना केवल विरह के कारण मुझे प्राप्त कर लिया । 'तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्' – (श्रीभागवतजी - ११/१२/१४) इसलिए हे उद्धव ! शास्त्र की जितनी भी आज्ञायें हैं, उन्हें छोड़ दो । कृष्ण का स्मरण करो – यही सबसे बड़ी विधि, सबसे बड़ा पुण्य और सबसे बड़ा धर्म है तथा कृष्ण को भूल जाना ही सबसे बड़ा निषेध है, सबसे बड़ा पाप है । अन्य जितने भी पुण्य-पाप हैं, सब इसके अधीन हैं । भगवान् उद्धवजी से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण बात कह रहे हैं कि समस्त शास्त्रों की आज्ञा को छोड़ दो । यह वही बात है जैसा कि भगवान् ने गीता में कहा है – **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।'**

भागवत में उद्धवजी से भगवान् कहते हैं – **मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।**
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१२/१५)

एकमात्र मेरी ही शरण में आ जाओ, एकमात्र मेरी ही भक्ति करो । अन्य समस्त शास्त्रों की आज्ञाओं को छोड़ दो । मेरी शरण में आ जाने पर किसी प्रकार का भय नहीं होगा । एकमात्र मेरी भक्ति करो और मेरे गुण-कर्मों का गान करो । उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! यह संसार बना कैसे है ? मेरा मन इस संसार से पृथक नहीं हो रहा है । भगवान् ने कहा – छः चक्र हैं । एक तो मूलाधार चक्र है, वह गुदा द्वार में है, इसके बाद अधिष्ठान चक्र है, नाभि में मणिपूरक चक्र है, हृदय में अनाहद चक्र है, कण्ठ में विशुद्धि चक्र है, भौंहों में आज्ञा चक्र है । वाणी ही इन छः चक्रों में होते हुए विस्तार को प्राप्त होती है । इस संसार से पार कैसे जाएँ तो भगवान् कहते हैं – **एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः । विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥** (श्रीभागवतजी - ११/१२/२४)

गुरु की उपासना से भक्ति मिलती है और भक्ति के द्वारा जीवभाव को काटकर मनुष्य प्रपञ्च के पार हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण बुद्धि के गुण हैं, आत्मा के नहीं ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः । सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥
(श्रीभागवतजी - ११/१३/१) यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि कोई व्यक्ति यदि भक्ति मार्ग पर चलता है, भक्ति करता है तो उसे राजस-तामस चीजों को छोड़ना चाहिए जैसे राजस-तामस संग, राजस-तामस भोजन, देश आदि को छोड़ना चाहिए । राजस तामस आहार में माँस-मछली, अंडा, शराब आदि के सेवन से दूर रहना चाहिए । जो लोग राजस-तामस आहार करते हैं, उनका संग नहीं करना चाहिए । ऐसे देश, ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए, जहाँ राजस-तामस आहार किया जाता है और ऐसी ही प्रकृति के लोग रहते हैं । भगवान् ने ऐसा क्यों कहा तो इसे उदाहरण के द्वारा समझो कि जैसे लोग स्कूल-कॉलेज की पढाई करते हैं तो कोई विद्यार्थी बी.ए.की कक्षा तक कैसे पहुँचता है ? पहले वह कक्षा दस की शिक्षा में उत्तीर्ण होता है, फिर कक्षा बारह में उत्तीर्ण होता है,तब बी.ए. और उसके बाद एम.ए. की कक्षा में पहुँचता है ।
इसी प्रकार तमोगुण से ऊपर है रजोगुण तथा रजोगुण से ऊपर है सतोगुण और सतोगुण से ऊपर हैं भगवान् । भगवान् के निकट है सतोगुण और रजोगुण भगवान् से दूर है । जैसे बी.ए. के नीचे की कक्षा है इन्टर, कक्षा आठ तो नहीं हो जाएगी । उसी प्रकार भगवान् के जो निकट है सतोगुण, इसलिए पहले साधक को सतोगुण प्रधान वस्तुओं का सेवन करना चाहिए । सतोगुणी वस्तुओं का सेवन करने से धीरे-धीरे साधक की वृत्ति अपने आप ही गुणातीत या निर्गुणा हो जाएगी ।भगवान् कृष्ण ने कहा – सत्त्वाद् धर्मो भवेद् वृद्धात् पुंसो मद्भक्तिलक्षणः – (श्रीभागवतजी - ११/१३/२)
जब सतोगुण बढ़ जायेगा तब मेरी निर्गुणा भक्ति की प्राप्ति होगी । इसलिए पहले सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करना चाहिए, सात्त्विक आहार करना चाहिए और संग भी सात्त्विक करना चाहिए । भगवान् तो हैं निर्गुण, उन भगवान् को पाना है तो पहले सतोगुण पर चढ़ो, रजोगुण-तमोगुण को छोड़ दो । अब प्रश्न यह है कि सतोगुण हमारे भीतर कैसे पैदा होगा, इसका उपाय क्या है, जैसे किसी को खीर बनानी है तो इसके लिए दूध, चावल और चीनी की आवश्यकता होती है, इनको मिलाने पर खीर बनेगी । इसलिए प्रश्न यह है कि हम लोग सतोगुणी कैसे बनें ? यदि हम सतोगुणी हो जायेंगे तो भगवान् के पास पहुँच जायेंगे । इसका उपाय भगवान् बता रहे हैं कि दस चीजें ऐसी हैं जिनका सेवन करने से तुम सतोगुणी बन जाओगे । वे दस चीजें कौन सी हैं तो भगवान् कहते हैं –

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च । ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१३/४)

पहली बात तो यह है कि सात्त्विक शास्त्र का अध्ययन करो । गन्दी पुस्तकें मत पढ़ो । अप का अर्थ है जल या अन्न अर्थात् सात्त्विक भोजन करो । राजस-तामस आहार मत ग्रहण करो । प्रजा अर्थात् सात्त्विक लोगों का संग करो, राजस-तामस लोगों का संग मत करो । सात्त्विक देश अर्थात् सात्त्विक स्थान पर बैठो, ऐसा नहीं कि जहाँ जुआ खेला जा रहा हो, लोग व्यर्थ की गप्पें हाँक रहे हों, वहाँ जाकर बैठ गये । सात्त्विक स्थान जैसे जंगल या एकान्त पवित्र स्थान में बैठो । काल अर्थात् सात्त्विक काल जैसे प्रातःकाल भजन करने बैठ जाओ । इसी प्रकार सात्त्विक कर्म करो । इसी तरह सात्त्विक जन्म, सात्त्विक ध्यान, सात्त्विक मन्त्र, सात्त्विक संस्कार आदि इन दस चीजों पर हर समय ध्यान दोगे तो तुम थोड़े ही दिनों में सात्त्विक बन जाओगे । परन्तु ये दस चीजें सात्त्विक होनी चाहिए । ऐसा नहीं कि दस में से पाँच चीजें सात्त्विक हैं, तीन चीजें राजस और दो चीजें तामस हैं । इसी बात को भगवान् ने आगे फिर कहा –

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान् सत्त्वविवृद्धये । ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत् स्मृतिरपोहनम् ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१३/६)

सात्त्विक वस्तुओं के सेवन से धर्म की वृद्धि होती है, धर्म से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से समस्त शारीरिक विकार नष्ट हो जाते हैं । उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! विषय विपत्तियों के घर हैं, इस बात को जानते हुए भी मनुष्य इन्हीं भोगों को भोगते हुए दुःख क्यों पाते रहते हैं ? श्रीभगवान् ने कहा – अहं से रजोगुण उत्पन्न होता है, रजोगुण से काम उत्पन्न होता है और फिर कामनाओं से ग्रसित मनुष्य विषय भोग में लगता है तथा इस कारण बार-बार उसे दुःख उठाना पड़ता

है । उद्धवजी ने पूछा – आपने सनकादिक ऋषियों को ज्ञान दिया था किन्तु आप तो कृष्ण रूप में हैं, सनकादिक तो यहाँ आपके पास आये नहीं, फिर आपने उनको ज्ञानोपदेश कब दिया ? भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा – उद्धव ! मैंने उन्हें हंस रूप से ज्ञान दिया था । एक बार सनकादिक ऋषियों ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया – पिताजी ! मन ने विषयों को पकड़ा है अथवा विषयों ने मन को पकड़ा है और मन विषयों से किस प्रकार छूट सकता है ? जैसे मनुष्य के मन में स्त्री, धन, लड्डू-पेड़ा आदि के प्रति आसक्ति है और ये विषय उसके मन में घुसे हुए हैं तो आप यह बताइए कि मन स्त्री, धन आदि विषयों में घुसा हुआ है अथवा स्त्री, धन आदि विषय मन में घुसे हुए हैं तथा ये विषय छूटेंगे कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर पहले एक उदाहरण के द्वारा समझो कि मान लो कोई व्यक्ति किसी सरोवर में डूब रहा है, पानी उसके शरीर में भी भर रहा है, बहुत सा पानी उसके मुख के भीतर भर गया है तो इस तरह पानी में शरीर है तथा शरीर में भी पानी है । अब उस डूबते व्यक्ति को किस प्रकार बचाया जा सकता है क्योंकि उसका शरीर भी पानी में है और बहुत सा पानी उसके शरीर के भीतर भी घुस गया है । अब वह व्यक्ति बच इस प्रकार सकता है कि किसी तीसरी चीज का सहारा पकड़कर पानी के बाहर आ जाये जैसे किसी कपड़ा, रस्सी या लठिया को पकड़कर वह पानी के बाहर आ सकता है । भगवान् इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कह रहे हैं कि इसी प्रकार विषय और मन एक दूसरे में घुस रहे हैं । इसलिए कोई मनुष्य विषय को छोड़ नहीं सकता, चाहे वह साधु बन जाए, चाहे गृहस्थ है, चाहे बूढ़ा है, चाहे जवान है । इनमें तीसरी चीज है भगवान् । जब भगवान् को मनुष्य पकड़ेगा तब वह विषय से छूट जायेगा । भगवान् कहते हैं – मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् – (श्रीभागवतजी - ११/१३/२८) मुझ तुरीय तत्त्व भगवान का सहारा पकड़कर मनुष्य विषय को छोड़ सकता है । जो भगवान् का सहारा नहीं लेता, वह चाहे ब्रह्मचारी बन जाए, चाहे सन्यासी बन जाए, चाहे तपस्या कर ले, वह विषय को नहीं छोड़ सकता है । जब विषय छूट जाते हैं तब साधक को अपने शरीर का भी होश नहीं रहता है ।

उद्धवजी ने पूछा – भगवन् ! आप एक हैं किन्तु आपकी प्राप्ति के मार्ग अनेक हैं, ऐसा क्यों है ? कोई कृष्ण को भगवान् मानता है, कोई राम को मानता है, कोई शिव को, कोई देवी को, कोई गणेशजी को भगवान् मानते हैं । कोई भगवान् को यज्ञस्वरूप मानता है, कोई कहता है कि परमात्मा तो केवल निराकार हैं । प्रश्न यह है कि जब भगवान् एक हैं तो उनके पाने के, उनको मानने के मार्ग इस तरह अनेक क्यों हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे कोई दीवाल घड़ी है तो उसमें क्या समय है, जिसकी दृष्टि ठीक है, वह दूर से ही घड़ी देखकर समय जान जाएगा । जिसकी आयु अधिक है, वृद्ध है, उसको घड़ी में समय दूर से साफ़ नहीं दिखाई देगा, कोई और अधिक बूढ़ा है तो उसको बिलकुल घड़ी के पास आने पर समय दिखाई देगा । ऐसा क्यों है, यह दृष्टि भेद है । घड़ी एक है किन्तु देखने वालों की दृष्टि अलग-अलग है ।

इसीलिए भगवान् ने उद्धवजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा –

'एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम्' – (श्रीभागवतजी - ११/१४/८)

मैं एक हूँ परन्तु सबकी प्रकृति, सबकी रुचि अलग-अलग है, अतएव मेरी प्राप्ति के रास्ते भी अनेक हैं ।

कोई सतोगुणी है तो वह सात्विक देवता की उपासना करता है, जो रजोगुणी है वह भगवान् के राजस रूप की उपासना करता है, जो तमोगुणी है वह भूत-प्रेत की उपासना करता है, उन्हीं को भगवान् मानता है और जिसका चित्त प्रेमरूप है, वह भगवान् के प्रेमरूप, कृष्णरूप को मानता है । प्रत्येक व्यक्ति की वृत्ति अलग-अलग है, अतः अलग वृत्ति के कारण वह उसी के अनुसार अपने इष्ट का चयन करता है ।

(प्राचीन काल में बरसाने के निकट स्थित पिसाया ग्राम की कदम्बखण्डी में बहुत अच्छे एक भजनानन्दी महात्मा रहते थे, हर समय वे राधा-कृष्ण नाम का जप करते रहते थे । ब्रज के परम रसिक संत श्रीप्रियाशरणबाबाजी महाराज जब उनके पास जाते तो वे उनसे कहते कि कोई अच्छी सी कथा सुनाओ तो श्रीप्रियाशरणजी महाराज उनको राधा-कृष्ण की कथा सुनाते, तब वे महात्मा कहते कि तुमने घघरिया पलटन की कथा सुनाई, अब कुछ महाभारत की भी युद्ध की कथा सुनाओ । वे कहते कि मैं यह जानता हूँ कि प्रेम सबसे ऊँची वस्तु है और गोपियों का प्रेम सर्वोच्च है परन्तु क्या करूँ, मेरी

रुचि वीर रस में है । जब मैं महाभारत सुनता हूँ कि युद्ध में उस योद्धा ने ऐसे बाण चलाये, अमुक योद्धा ने ऐसे गदा चलाई तो युद्ध की कथा सुनने पर मुझे बड़ा आनन्द आता है । राधा-कृष्ण का नाम मैं कई वर्षों से जप रहा हूँ किन्तु मेरी वीर-रस की प्रकृति अभी भी जोर मार रही है ।)

अतः अपनी-अपनी रुचि के अनुसार एक भगवान् की अनन्त उपासनायें हैं और एक ही भगवान् के अनन्त रूप हैं ।

आगे भगवान् ने कहा – निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् । अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१४/१६) जो भक्त निरपेक्ष है, जिसे कुछ नहीं चाहिए, उसके पीछे-पीछे मैं इस आशा से चलता हूँ कि इसकी चरण रज मेरे ऊपर पड़ जाए और मैं पवित्र हो जाऊँ । इस सुख को अभक्त लोग नहीं जान सकते हैं ।

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ (श्रीभागवतजी - ११/१४/१८) कोई आदमी चाहे गृहस्थ हो अथवा विरक्त हो, जब वह भक्ति करना प्रारम्भ करता है तो एक दिन में तो कोई सिद्ध नहीं बन सकता । वह अजितेन्द्रिय है तो भक्ति करते हुए भी उसकी इन्द्रियाँ विषयों में जायेंगी । अतः साधक अथवा नया भक्त तो विषयों में अवश्य ही गिरेगा । परन्तु जब आगे चलकर उसकी भक्ति प्रगल्भ हो जाएगी तब वह विषयों को जीत लेगा । इसलिए कोई व्यक्ति यदि भक्ति कर रहा है और बीच में वह विषयासक्ति के कारण गिर पड़ा, पतित हो गया तो उस पर हँसना नहीं चाहिए । यह सोचना चाहिए कि यह सांसारिक लोगों से तो अच्छा ही है, इसने भक्ति मार्ग पर चलना तो आरम्भ कर दिया है । एक दिन वह माया को जीत लेगा । **'न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥'** (श्रीभागवतजी - ११/१४/२०) योग, ज्ञान, धर्म, शास्त्र का अध्ययन, तपस्या और त्याग मुझे प्राप्त कराने में वैसे समर्थ नहीं हैं, जैसी दिनों-दिन बढ़ने वाली मेरी भक्ति । **धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥** (श्रीभागवतजी - ११/१४/२२) धर्म करने से कल्याण नहीं होगा, सत्य और दया से भी कल्याण नहीं होगा । केवल मेरी भक्ति ही कल्याण करती है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – जब साधक इन्द्रिय, प्राण अपने वश में करके अपना चित्त मुझमें लगाने लगता है, मेरी धारणा करने लगता है तब उसके सामने बहुत सी सिद्धियाँ आती हैं । उद्धवजी ने पूछा – कौन-सी धारणा करने से कौन-सी सिद्धि प्राप्त होती है ? उद्धवजी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले आठ, फिर दस और उसके बाद पाँच प्रकार की सिद्धियाँ बतायीं । आठ सिद्धियाँ सत्त्वगुण के विकास से मिल जाती हैं । पाँच सिद्धियाँ योग से प्राप्त होती हैं । भगवान् ने इस अध्याय के अन्त तक सिद्धियों के बारे में बताया है । साधक को सिद्धियों के लोभ में नहीं पड़ना चाहिए । भक्त कभी भी रिद्धियों-सिद्धियों के चक्कर में नहीं पड़ता है क्योंकि विशुद्ध प्रेम में बाधा आ जाती है ।

विषय -त्याग से भगवत्प्राप्ति

भोगों से ऊपर उठने के बाद ही भगवान् की करुणा की अनुभूति होती है ।

हमारा ये मन उछल कूद बंद नहीं करता है । ये मन ही हमें मारता है । ये मन ही हमारा मित्र है और ये मन ही हमारा शत्रु है । दुनिया में कोई और बैरी नहीं है; बैरी है अपना मन, जो भगवान् की ओर नहीं चलता है । लेकिन इस बैरी से हम प्यार करते हैं, इसकी ही बात मानते हैं, हम इसके गुलाम हो गये हैं और इसी कारण हमारा नाश हो रहा है । हम अपना गला खुद काट रहे हैं ।

मनुष्य बनने के बाद भी अगर हम इस अन्धकार से न निकल पाये तो हम आत्महत्यारे हैं । अगर हम भोगों से निवृत्त नहीं हैं तो आत्महत्यारे हैं । हम करोड़ो-अरबों रुपया भी कमा लें पर अगर भोगों में लिप्त हैं तो इसका मतलब हम घोर अन्धकार में ही जा रहे हैं, जड़योनि में जा रहे हैं । भोगों से ऊपर उठने के बाद भगवान् की करुणा की अनुभूति होती है; जिसको भक्तलोग गाते हैं, अनुभव करते हैं, जैसे ध्रुव जी ने किया । कैसे किया? अपनी हर इन्द्रियों को ऊपर उठाकर ।

अपनी हर इन्द्रियों को ऊपर उठा दो । जीभ को ऊपर उठा दो । जीभ को सर्पिणी मत बनाओ, मेंढक मत बनाओ । गोसाईं जी लिखते हैं कि जो जीभ भगवान् के नाम का गुणगान नहीं करती, वह सर्पिणी है । **जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥** अपनी जीभ को ऊपर उठाओ, अपने कान को ऊपर उठाओ, अपनी नासिका को ऊपर उठाओ, उठाने से मतलब इनको बहिर्मुख मत होने दो, अन्तर्मुख कर लो । कई लोग बोलते हैं कि कथा में गृहस्थी बैठे हैं, ये भोग भोगते हैं । हाँ गृहस्थी बैठे हैं पर सत्संग सुनने के प्रभाव से वे घर जाकर इन भोगों को अच्छा नहीं समझते । अच्छा न समझने के कारण धीरे-धीरे उनकी आसक्ति घटती जाती है । वह बार-बार सुनता है कि विषय विष हैं । फिर वह विषय को पाकर खुश नहीं होता । ये ही बात एक दिन उसको भगवान् से मिला देगी । इसीलिए सत्संग में हर रोज जाना चाहिए और अपने उद्धार के बारे में सोचना चाहिए । भक्त वही है जिसके मन में धन-संपत्ति, जमीन-जायदाद इन मायिक चीजों का कोई महत्व नहीं । जैसे राजा बलि ने अपनी धन-सम्पत्ति सब भगवान् को दे दी थी और अंत में अपना शरीर भी दे दिया था । इस कसौटी पर हम जैसे सब फेल (असफल) हैं । **त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुंठ.....वैष्णवाग्र्यः ॥** (श्रीभागवतजी ११/३/५३) भक्त कौन है? भक्त उसको कहते हैं जिसके सामने तीनों लोकों की लक्ष्मी रख दो, तीनों लोकों की सुख-सम्पत्ति रख दो, तीनों लोकों की भोग-सामग्री रख दो लेकिन वह उसकी याद भी नहीं करता कि सामने लड्डू का थाल आ गया या कौन अप्सरा खड़ी है । ये बात उसकी स्मृति में भी नहीं आती । भक्त आँखों से देखता तो है, ऐसा नहीं कि भक्त अन्धा हो जाता है पर देखने-देखने में फर्क होता है । एक बच्चा अपनी माँ की गोद में नंगा पड़ा रहता है और उसकी माँ भी अपने सब वस्त्र खोल करके अपने स्तन से दूध पिलाती है । बच्चा अपनी माँ को नग्न अवस्था में देखता है लेकिन उसकी दृष्टि में भोग-दृष्टि नहीं है । उसी तरह से भक्त लड्डू भी देखता है, अच्छी स्त्री को भी देखता है, पर फर्क ये है कि उसकी स्मृति में ये बात नहीं आती है कि ये भोग है या ये सुंदर स्त्री है । जब मन स्वच्छ हो जाता है तब सर्वत्र केवल परमात्मा ही दिखाई देता है ।

☀ कृष्ण प्रेम की पहचान ☀ सनातन गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण प्रेम की पहिचान क्या है? बोले – "श्रीकृष्ण प्रेम की पहिचान ये है कि श्रीकृष्ण प्रेम सब रागों से बलवान है । ये इतना बलवान है कि यदि ये आ गया तो संसार में फिर कहीं भी आसक्ति रह ही नहीं सकती । यहाँ तक कि फिर भगवान् के ऐश्वर्य रूप से भी मन हट जाएगा ।" इसी कारण गोपियाँ कहती हैं – "कहा करैं बैकुण्ठहिं जाय ।" हमें बैकुण्ठ से क्या काम? हमें तो ये ही मधुर रूप चाहिए ।

प्रेम के बारे में कहा गया है कि श्रीकृष्ण में जब रति होती है तो हृदय की जितनी भी वासनायें हैं, जितने भी काम तत्व हैं वे सब जल जाते हैं; फिर वहाँ सांसारिक राग कहाँ से रहेगा? जब न रहेगा बाँस तो न बजेगी बाँसुरी । बाँस ही नहीं रहा तो बाँसुरी कहाँ से बजेगी? कैसे? बोले – राग का स्थान होता है चित्त (अन्तःकरण) । जब श्रीकृष्ण में रति हो जाती है तो जितना पंचकोष है इसे वह रति जला देती है । हम इसी मन से संसार में प्रेम करते हैं, इसी मन से भोग भोगते हैं, इसी मन से सब आसक्तियाँ करते हैं । सबका मूल है मन । गीता में भगवान् कहते हैं कि मन के आगे इन्द्रियाँ आदि कुछ नहीं । भागवत में भी भगवान् उद्धव से कहते हैं कि जितने भी देवता हैं ये सब मन के आधीन होते हैं, मन को कोई भी देवता वश में नहीं कर पाया । अत: समस्त देवों का देव वही है जिसने अपने मन को जीत लिया । **'मनोवशेऽन्ये ह्यभवन्.....स हि देवदेव: ॥'** (भा. ११/२३/४८) परन्तु प्रभु-प्रेम इस मन को ही जला देता है तो फिर राग, आसक्तियाँ कहाँ रहेंगी? फिर तो इस मन में सिर्फ श्रीकृष्ण रति रह जायेगी । योगी लोग कहते हैं कि मन से अलग हट जाओ । भक्त कहते हैं कि झगड़ा करने की जरूरत नहीं है । मन को श्रीकृष्ण से स्पर्श करा दो तो मन अर्पण हो जाता है ऐसा है श्रीकृष्ण प्रेम । जब तक संसार के दुःख व्यापते हैं तब तक भगवान् से प्रेम नहीं है । कृष्ण प्रेम होने पर तीन बातें होती हैं । 'एक' तो श्रीकृष्ण प्रेम बढ़ता रहता है कि कैसे श्रीकृष्ण को देखें, कैसे श्रीकृष्ण की बंसी सुनायी पड़े? 'दूसरा' कोई भी दुःख नहीं सताता, चाहे आग लग जाये, चाहे कोई बीमार हो जाये । अगर कृष्ण प्रेम है तो दुःख सता ही नहीं सकता उनको । 'तीसरी' सब आसक्तियाँ खत्म हो जाती हैं । जब संसार में लड़की की शादी होती है तो शादी के बाद अपने पीहर की

सब बातें भूल जाती है । क्यों? 'अपने पति के प्रेम में' । फिर ये तो भगवान् का प्रेम है । जब संसार के प्रेम में ये बात घट जाती है तो भगवान् के प्रेम में कैसे नहीं घटेगी? इसलिए इन तीनों बातों को याद रखो । ये अपने आपको नापने का थर्मामीटर हम बता रहे हैं कि भगवान् से प्रेम आपको है या नहीं । जब तक संसार के दुःख व्यापते हैं तब तक भगवान् से प्रेम नहीं है । हम सब अपने को भक्त समझे बैठे हैं पर ये भूल है । भगवान् ने स्पष्ट कहा है - समदुःखसुखः स्वस्थः .....निन्दात्मसंस्तुतिः ॥ (गी. १४/२४) जिसे दुःख-सुख समान हो गया, वह ही इस अमृत को प्राप्त कर सकता है । इसको कहते हैं आध्यात्मिक बुद्धि, कि हमको कुछ कर दो चाहे जला दो लेकिन सुख-दुःख में समान रहेंगे, जैसे प्रह्लाद जी ने करके दिखाया । ऐसा होना चाहिए हमें । अपनी कमजोरी को समझना चाहिये । ये छोटी-छोटी चीजें, जो हमें परेशान करती हैं, इनके कारण हम अमृत के रास्ते पर नहीं चल सकते । अमृत के रास्ते पर चलना है तो मरना ही पड़ेगा । क्या दुःखी होने से दुःख घट जाता है? आप खुद ही सोचो । इसलिए मनुष्य को दुःख हँसकर भोगना चाहिये । दुःख को भगवान् की कृपा समझकर भोगने से पाप नष्ट होते हैं । सब आचार्य हमें अपनी कमियाँ दिखाते रहते हैं, अब हम मानें या न मानें । विदुर जी ने जाते-जाते एक आखिरी बात कही थी अपने अन्धे भाई से, "अरे राजन्! निकल जा, अभी भी समय है, देख, काल आ रहा है और तू भोगों में लगा हुआ है, उसको देख जो सिर पर आने वाला है और उसका कोई भी इलाज नहीं है । मौत का कोई इलाज नहीं है इसलिए निकल जा ।" विदुर ने ये नहीं सोचा कि भाई अन्धा है, कहाँ जायेगा? बोले – "जहाँ कोई सेवा करने वाला न हो वहाँ चला जा ।" गतस्वार्थमिमं देहं .... धीर उदाहृतः ॥ (भा. १/१३/२५) धृतराष्ट्र रात में ही उठकर जंगल की ओर चले गये, वहाँ जाकर के कष्ट सहा और भगवान् को प्राप्त किया । अगर विदुर जी नहीं आते तो धृतराष्ट्र आराम से हलवा-पूड़ी खाते रहते । गोस्वामी जी ने कहा कि जिसके अंदर श्रीकृष्ण प्रेम है वहाँ कुछ और नहीं है । कृष्ण प्रेम में ये तीन बातें जरूर होती हैं । अगर ये तीन बातें नहीं हैं तो कृष्ण प्रेम नहीं है । हमारे में जब तक ये बातें नहीं आतीं तब तक हम भगवान् के मार्ग में प्रवेश नहीं कर सकते ।

गोसेवा से संस्कार व संस्कृति का संपोषण

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ।
गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी ॥

आदर्श मानव-जीवन व गौरवशालिनी सनातन संस्कृति की परम पोषिका गोमाता हैं । जीव-कल्याण तथा विश्व-मंगल में गोवंश की बहुत बड़ी भूमिका है । भक्तिमय जीवन की गाय ही परम निधि स्वरूपा हैं; प्राचीन भारत का भक्तिमय वैभव 'गौ' पर आधारित था, भारतवर्ष के उज्जवल भविष्य की परिकल्पना भी एकमात्र गोसेवा के संवर्द्धन पर टिकी हुई है । शारीरिक व आध्यात्मिक-पोषण का सबसे बड़ा माध्यम गाय ही है ।' 'भारतवर्ष' परम पुण्यमयी साधन की भूमि है, जहाँ पर लोग भक्तिमय साधन करके सहज ही भगवान् व उनकी भक्ति की प्राप्ति कर लेते हैं; जिस परम पावनकारी देश में स्वयं साक्षात् श्रीभगवान् के अवतार होते हैं तथा संत-ऋषि-महात्माजन आराधना के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का मंगल करते हैं; ऐसी अति अनुपम गौरवशालिनी भारतभूमि में 'गोमाता' का प्रमुख स्थान है, जिसके कारण से ही भारत 'भारत' है अर्थात् 'निरन्तर भक्ति में रत' होने से इसे 'भारत' कहते हैं । भारतवर्ष में गौवंश की सेवा होने पर हर प्रकार से प्रत्येक क्षेत्र-विभाग में भरपूर सहयोग मिलता है । 'गाय माता' पालन-पोषण करने वाली ऐसी महाजननी है जो अपने प्रत्येक अंग-प्रत्यंग से सभी प्रकार से सहयोग कर सम्पूर्ण सृष्टि का परम मंगल (कल्याण) करती है । जगत्-स्थितिकी कारणस्वरूपा सत्ताओंमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सत्ता गोमाताकी है, यह बात ऊपर उद्धृत किये हुए भगवान् वसिष्ठके वचनसे स्पष्ट है। श्रुति - स्मृति-पुराणादि ग्रन्थोंमें प्रतिपादित अलौकिक सुखके साधक कर्मोंके साथ-साथ लौकिक सुखके साधक कर्मों के लिये भी गौ की अत्यन्त आवश्यकता है, इस विषयमें किसी भी विचारशील पुरुषका मतभेद नहीं हो सकता। किसी भी लौकिक या अलौकिक

कार्यकी सिद्धिके लिये सुदृढ़ शरीरका होना आवश्यक है। श्रुति बतलाती है कि बलहीन मनुष्य कभी आराम-लाभ नहीं कर सकता। सारे लौकिक व्यवहार भी बल के आधार पर ही होते हैं। अतः सब कार्योंकी सिद्धि जिस बलपर आधारित है, उस बलकी प्रतिष्ठा गोमाता ही अपने दूध, घी, मक्खन आदिके द्वारा कराती है । बल भी शारीरिक और मानसिक-दो प्रकारका होता है। शारीरिक बलकी अपेक्षा मानसिक बल अधिक श्रेष्ठ माना जाता है । प्राचीन ऋषि-महर्षियोंने मानस बलको ही बढ़ाकर समस्त दुःखों से मुक्त होने की ओर उसका उपयोग किया है । वैदिकधर्ममें आहार-विहारादिकों के सम्बन्धमें जो निर्देश हैं, वे इसी बल की वृद्धि के लिये हैं । 'बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्'- गीता में कहे गये इस भगवद् वचन का भी यही अभिप्राय है। अतः शारीरिक बल को बढ़ाने के अन्य साधनोंके रहते हुए भी, शरीर और मन दोनोंके दोष हरण कर मनोबलको बढ़ानेमें गाय का दूध ही सर्वोत्तम आहार होनेसे गोमाताकी श्रेष्ठता सहज ही आकर्षक है । नन्दिनीके पावन संसर्गसे संवर्द्धित महर्षि वसिष्ठके ब्रह्मतेजसे चकाचौंध होकर सम्पूर्ण मनुष्य-आनन्द के भोक्ता राजा विश्वामित्रको 'धिग्बलं क्षत्रियबलम्' कहकर अपना ही बल धिक्कारना पड़ा और ब्रह्मतेजकी खोजमें राजपाट त्यागकर तपका आश्रय लेना पड़ा। भगवान् वसिष्ठकी गाय को सिंहका ग्रास होनेसे बचानेके लिये महाप्रतापी राजा दिलीप अपने सार्वभौम ऐश्वर्य, यौवन अवस्था और सुन्दर शरीरकी कोई परवाह न कर अपने प्राण अर्पण करने को तैयार हो गये। गौओंकी रक्षाके लिये ही भगवान् गोपालकृष्णने गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया। समर्थ गुरु रामदास स्वामीकी आज्ञासे छत्रपति महाराज शिवाजीने गो-ब्राह्मण- प्रतिपालनमें ही अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी। इन सब बातोंसे गोमाताके महत्त्व का किंचित् परिचय मिलता है। पहलेके लोग गोमाता के इस महत्व को समझते थे और गोरक्षामें विशेष यत्नवान् होकर अपना ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण साधन करते थे। विराट एक माण्डलिक राजा थे, उनके पास लाखों गौएँ थीं; उन सबकी देख-भाल करनेका काम उन्होंने एक समय पाण्डुसुत सहदेवको सौंपा था। पर अब ऐसी गोशालाएँ रखनेवाले कितने राजा हैं। महाभारतमें राजा युधिष्ठिरको उपदेश करते हुए भीष्म पितामह बतलाते हैं – **अटवीपर्वताश्चैव नद्यस्तीर्थानि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तत्र परिग्रहः ॥** 'वन, पर्वत, नदी और तीर्थोंपर किसीका स्वामित्व नहीं होता; सबके लिये ये खुले रहते हैं। कोई इन्हें अपना ही स्वत्व मानकर इनका परिग्रह न कर बैठे।' यदि इस नीतिके अनुसार वन, पर्वत, नदी और तीर्थ गौओंके लिये खुले रखे जायँ तो करोड़ों गौओंका पालन-पोषण हो सकता है और उससे भूमिकी शस्योत्पादन-शक्ति भी कई गुना बढ़ सकती है। पर हम सरकारको क्या कहें, जबकि भारत के वैदिकधर्माभिमानी लोग ही अपने कर्तव्यसे च्युत हो गये हैं। यदि ये लोग घर- घर गौ रखनेका निश्चय कर लें तो उनके उतने ही पवित्र संकल्पबलके फलस्वरूप सरकार भी वन-पर्वतादि स्थानोंसे अपना स्वामित्व हटा ले सकती है। प्रत्येक मनुष्यके लिये गौ रखना चाहे सम्भव न हो, पर गौ का एक चम्मच दूध सेवन करने का व्रत तो प्रत्येक मनुष्य ले सकता है और यदि सब हिंदू ऐसा व्रत ले लें तो इससे भी गौकी रक्षा होगी। सच्ची गोरक्षा ऐसे ही व्रत से हो सकती है । महर्षि वसिष्ठ ने इक्ष्वाकुवंशके सौदास राजाको इस सम्बन्धमें बड़े ही महत्त्वका उपदेश किया है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं – **गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः । सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥ गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा । गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥** 'नदियाँ जिस प्रकार समुद्रसे जा मिलती हैं, उसी प्रकार सुवर्ण शृङ्गवाली और दूध देनेवाली गौएँ मुझे प्राप्त हों। ऐसा हो कि नित्य मैं गौओंको देखूं और गौएँ मेरी ओर देखें; कारण, गौएँ हमारी हैं और हम गौओंके हैं; गौएँ हैं, इसीसे हमलोग भी हैं।' महर्षि आगे कहते हैं – **एवं रात्रौ दिवा चापि समेषु विषमेषु च । महाभयेषु च नरः कीर्तयन् मुच्यते भयात् ॥** 'जो इस प्रकार गौकी महिमाका दिन-रात, सम्पत्ति-विपत्ति में तथा महाभय के उपस्थित होने पर भी ध्यान रखता और तदनुसार स्वयं आचरण कर उसका प्रचार करता है, वह सब भयोंसे मुक्त हो जाता है ।' **'यतो गावस्ततो वयम्'** (गौएँ हैं, इसी से हमलोग हैं) – यह बात सबको ध्यानमें रखनी चाहिये । गौएँ न हों तो हमलोग भी नहीं हैं - यह बात भारत की वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक, आयु-आरोग्य-बल-तेज-सम्बन्धी सर्वविध दुःस्थितिसे सबके सामने स्पष्ट होती ही जा रही है। 'गौएँ हमारी और हम गौओं के' यह भाव नष्ट हो जानेसे ही आज हमलोगोंकी ऐसी दुर्दशा हो रही है। हमारा अस्तित्व

ही जब गौपर अवलम्बित है, तब खली-कराई या घास-भूसा महँगा होनेके कारण गौको घरसे विदा करने या घरमें गौ न रखनेकी अपेक्षा परिवारके ही किसी व्यक्तिको निर्वाहके लिये बाहर भेजकर गोमाताकी सेवामें दक्ष रहनेवाले धीर पुरुष आज बहुत ही दुर्लभ हो गये हैं। **'गावः स्वस्त्ययनं महत्'** (गौ मङ्गलका परम निधान है), यह महर्षि वसिष्ठका वचन है। पहले गौओंका इस देशमें पालन-पोषण बहुत अच्छी तरहसे होता था, इसीसे यह देश सब मङ्गलोंका निवासस्थान बन गया था। परन्तु इस समय गोपालनके अभावसे यह अमङ्गल - दशाको प्राप्त हुआ है। वैधृति, व्यतीपात एवं अमावस्या-जैसे कुयोगपर जन्मनेवाले संतान गोप्रसव शान्तिके द्वारा निर्दोष हो जाते हैं- यह धर्मशास्त्रका विधान है। अतः अमङ्गल जन्म भी जिस गौ की संनिधि से मङ्गलकारक हो जाते हैं, उस गौकी अपेक्षा अधिक मङ्गलकारक प्राणी जगत् में और कौन हो सकता है। श्रौतस्मार्त कर्मोंमें गो-दुग्धादि अति पवित्र हवि द्रव्य हैं। पञ्चगव्य त्वगस्थिगत पापका नाश करनेमें भी समर्थ होता है। इस प्रकार गोमाताके सब प्रकारसे मङ्गलमय होनेके कारण पूर्वकालके राजा सब धनोंमें गोधनको ही सर्वश्रेष्ठ जानते थे। उत्तर गोग्रहण-प्रकरणसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। कौरव जिस गोधनको हर ले जा रहे थे, उसे छुडानेके लिये अज्ञातवाससे पाण्डव निकल पड़े और गौओंको फिरा लाये। देशकी उन्नतिका विचार करनेमें लगे हुए लोगोंकी संख्या कम नहीं है; पर बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि गोरक्षा ही देश की उन्नति का मूल साधन है, यह अभीतक इन लोगोंके ध्यानमें नहीं आ रहा है! कहने का तात्पर्य यह है कि सब प्रकार के ऐहिक और पारलौकिक सुखका मूल साधन गोरक्षण है। प्रत्येक वैदिकधर्माभिमानी पुरुषका यह कर्तव्य है कि इस मूलसाधन कार्यमें तत्पर हो। हिन्दुस्तान के सब राजा-महाराजा, ग्रन्थकार, पत्रकार और सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य देशकार्यकर्त्ता गोमाताके प्रतिपालनमें लग जायें। **गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः । अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥** 'गौ, ब्राह्मण, वेद, पतिव्रता स्त्री, सत्यवादी, निर्लोभी पुरुष तथा दानशील धनी-इन सातोंने पृथ्वीको धारण कर रखा है।' पृथ्वीको धारण करनेवाले इन सातोंमें प्रथम स्थान गौका है और वह ठीक ही है। गोरक्षाके कारण भारतवर्षका पुण्यभूमि नाम चरितार्थ होता है और जो सुख सबको अभीष्ट है, वह इसी पुण्यबलसे प्राप्त होनेवाला है। जगदीश्वर द्वारा निर्मित सर्वार्थप्रकाशक वेदोंके विचारमन्थनसे निष्पन्न गोसेवन-स्वरूप जगत्स्थिति-साधनका जिसने अवलम्ब किया, उसपर जगत्स्थितिपालनदक्ष परमेश्वरकी पूर्ण कृपावर्षा होगी - इसमें संदेह ही क्या ? सर्वान्तर्यामी निखिलजगत्पालककी कृपासे उपरिनिर्दिष्ट गोसेवा व्रत सब लोग ग्रहण करें, उससे सब लोग पूर्ण सुखी और समृद्ध हों, सर्वदेवमयी गोमाताके वंशका सर्वत्र सुखविस्तार हो । आज का मानव-संसार भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञानकी ओर प्रगतिशील है। इस विज्ञान-द्वयीके चक्करमें फँसे हुए मानवके सम्मुख यदि धर्मकी चर्चा की जाय, तो यह कहकर टाल दिया जाता है कि मनुष्यकी सब आवश्यकताओंको विज्ञान पूरी कर रहा है; फिर यह धर्मकी दुहाई क्यों ? यदि विज्ञान- भक्तिका चश्मा उतारकर शुद्ध दृष्टिसे देखा जाय, तो मालूम होगा विज्ञान और धर्मका चोली- दामनका सम्बन्ध है, ये दोनों परस्पर-सापेक्ष हैं। हिन्दू-संस्कृति में जहाँ धर्म को प्रधानता दी गयी है, वहाँ विज्ञान की भी उपेक्षा नहीं की गयी । हिन्दू-संस्कृति में गो-सेवा को प्रधान धर्म माना गया है । वैदिककाल से लेकर आजतक गो-गरिमाके गीत गाये गये हैं । सूखे हुए गोमयमें इस प्रकारका तेजाब पाया गया है कि जिसके परमाणुओं से हजारों विषैले कीट तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। गौ के दुग्ध, दधि और घृतादिमें वे सब विटामिन मौजूद हैं, जो अन्य किसी दुग्धादि में नहीं पाये जाते और जो मनुष्य-जीवनके लिये आवश्यक हैं। गोमूत्रमें कितने ही छोटे तथा बड़े रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है; तभी तो 'गावः प्रतिष्ठा भूतानाम्' कहकर इसकी महत्ताको शास्त्रने स्वीकार किया है । धार्मिक, आर्थिक और वैज्ञानिक-सभी दृष्टियों से ईश्वर की सृष्टि में गौ का प्रमुख स्थान है, विशेषकर भारत- जैसे कृषिप्रधान देश में । अतः ऐसे परम हितकारी जीव की रक्षा के लिये हमें कटिबद्ध होकर धार्मिक तथा नैतिक ग्रन्थोंके आधार पर गो-रक्षा-विधान बनाना चाहिये । धार्मिक संस्थाओंके साथ-साथ नैतिक संस्थाओं को भी गो-रक्षा-कार्य को अपने हाथ में लेना चाहिये ।

ब्रजशरण

श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीमाताजी गौशाला, बरसाना में ७० हजार गौवंश की मातृवत् सेवा

माताजी गौशाला के
आँगन में प्रसन्नमुद्रा में बछड़े

माताजी गौशाला में वीमार गायों
की चिकित्सा-सेवा

गायों के लिए मौसमी फल-सब्जी की सेवा

श्री माताजी गौशाला की परिक्रमा

ब्रह्माण्ड की परिक्रमा है

– श्री राजेन्द्रदास
महाराज जी

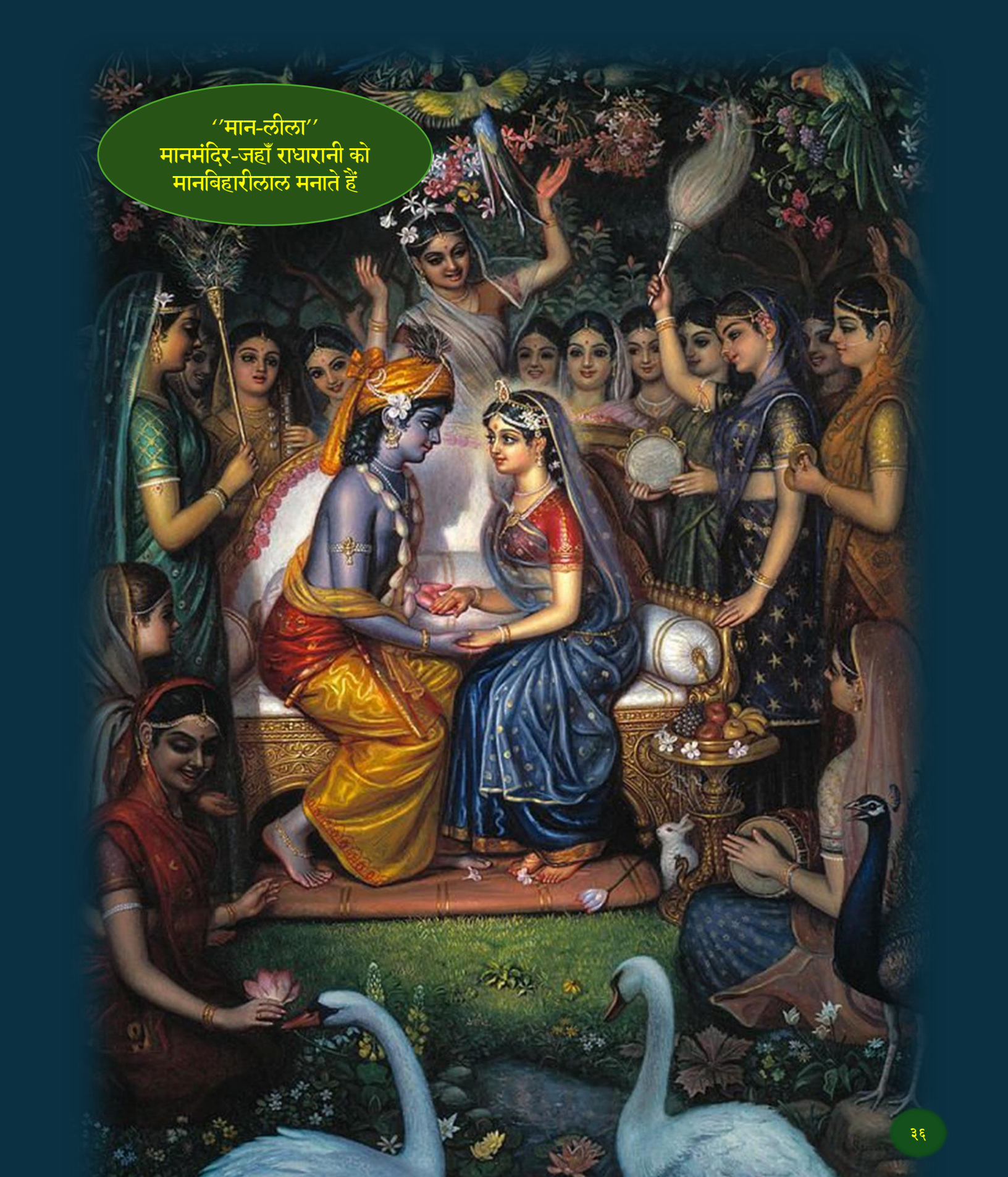

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26